



# THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

[WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC](http://WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC)

---

## FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

**If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.**

**-The TFIC Team.**

# जैन भारती ५

(भारतीय संस्कृति की पोषक)

लेखक

शादीलाल जैन

प्रिंसिपल

जैन समनोपासक हायर सेकेण्डरी स्कूल

सदर बाजार, दिल्ली-११०००६

प्रकाशक

आदीश्वरलाल जैन

एम. ए.

डो-२/८, माडल टाउन, दिल्ली-११०००६

सत्त्वेषु मैत्रो गुणिषु प्रमोदं,  
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम् ।  
माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ,  
सदा ममात्मा विदधातु देव ॥

मैत्रीभाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे,  
दीन दुःखी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्रोत बहे ।  
दुर्जन क्रूर कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,  
साम्यभाव रक्खूँ मैं उनपर ऐसी परिणति हो जावे ॥

## प्रस्तावना

भगवान् महावीर केवल जैनो के लिये ही नहीं अपितु समस्त ससार के लिये बढनीय हैं। आज से 2500 वर्ष पूर्व भारत के इस महा मानव ने अहिंसा और सत्य के माध्यम से अनंत तथा स्थायी सुख और शान्ति प्राप्त करने का उपदेश दिया था जिस पर मनुष्य समाज आज भी आचरण करके इस भूतल को स्वर्गतुल्य बना सकता है।

भगवान् महावीर के 2500 वें निर्वाणान्द पर समस्त ससार के जैनो में एक विशेष धर्म-प्रेम, स्फूर्ति और कार्य-कुशलता देखने में आई। फलस्वरूप भारत के समस्त राज्यों में प्रदेश समितियाँ गठित की गईं जिनके प्रमुख समाज सेवी तथा प्रमुख राज्याधिकारी सदस्य बने। जिनका उद्देश्य था इस सुअवसर पर भगवान् महावीर स्वामी के सदेश को जन-जन तक पहुँचाना। अतः दिल्ली प्रदेश में भी 2500 वीं भगवान् महावीर निर्वाण समिति बनाई गई। ला० डिप्टीमल जी जैन इसके उपप्रधान बने। वह तन, मन और धन से इस सुकार्य में लगे। अनेक योजनाओं में उनकी एक यह भी योजना थी कि भगवान् महावीर के उच्चादर्शों तथा जैनो द्वारा प्रत्येक क्षेत्र में भारतीय सस्कृति को संजोने की जानकारी एक छोटी से आसान पुस्तक के द्वारा साधारण भारतीय तक पहुँचाई जाये।

ला० डिप्टीमल जी के आदेशानुसार बड़े परिश्रम से यह पुस्तक तैयार की गई है और निर्भयता से अपने अपट्ट विचार इसमें दिये गये पाठक महोदय इसे पुस्तक का अवलोकन करके जान पायेंगे।

कि जैनो का अतीत भारतीय सस्कृति के लिये कितना गौरवमय है और भगवान् महावीर का सदेश संसार के प्रत्येक प्राणी के लिये तीनों समयो मे कितना वास्तविक, सुखमय और शान्तिपूर्ण है ।

इस पुस्तक का मली प्रकार सिहावलोकन राजकीय पुरस्कार विजेता पं० हीरा लाल जी शास्त्री, पं० सुमेर चन्द जी जैन शास्त्री, श्री घनदेव कुमार जी प्रभाकर और मेरी सुपुत्री श्रीमती डा० अमरा जैन, एम०ए०पी०एच०डी० ने किया है । मै इन सब महानुभावों का आभारी हूँ । डा० श्री मुनीन्द्र कुमार जैन एम०ए०एलएल०बी० जे०डी० के सुझावो के लिये मै हृदय से कृतज्ञ हूँ ।

खेद है कि यह पुस्तक एक वर्ष से अधिक प्रेस मे रही और समय पर न छप सकी । फिर भी इसकी उपयोगिता सर्व सिद्ध है, ऐसा मेरा विश्वास है ।

पाठको से निवेदन है कि इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात् अपनी अमूल्य सम्मति निम्न पते पर भेजे :

8-ई, सदर थाना रोड, दिल्ली-110006.

अगस्त, 1977

भवदीय

शादी लाल जैन

प्रिंसिपल

इस प्रकाशन के प्रेरक

ला० डिप्टीमल जी जैन

का संचिप्त परिचय



अहिंसा, सच्चाई, ईमानदारी, कर्मठता, समाज सेवा तथा देश सेवा की जीवंत मूर्ति ला० डिप्टी मल जैन का जन्म 16 नवम्बर सन् 1894 को दिल्ली में हुआ। सन् 1917 में सेंट स्टीफन्स कालेज से बी.ए. की डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् आपने लाहौर में एल. एल. बी. में प्रवेश प्राप्त किया। सन् 1919 में अमृतसर में जलियांवाला बाग हत्या काण्ड से प्रभावित होकर आपने एल.एल.बी. परीक्षा का बहिष्कार किया। मेधावी छात्र होने के कारण आप प्राइमरी से बी. ए. तक निरंतर सरकारी छात्रवृत्ति प्राप्त करते रहे।

बाल्यकाल से ही समाज सेवा की ओर आपकी विशेष रुचि रही है। सन् 1913 में, अपने विद्यार्थी काल में ही, आपने हिंदू युवक समा का संगठन किया जिसके अंतर्गत एक पुस्तकालय व कमजोर बच्चों की निःशुल्क शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया। तदुपरांत सेठ केदारनाथ गोयनका के सहयोग से दिल्ली में सर्वप्रथम सार्वजनिक मारवाड़ी पुस्तकालय और वाचनालय की नींव डाली। सन् 1917 में पहली

बार एक स्वयंसेवक संस्था 'इंद्रप्रस्थ सेवक मंडली' के नाम से स्थापित की। उपर्युक्त समस्त समाज-सेवी संस्थाओं के आप मुख्य सचिव के रूप में कार्य करते रहे।

देश-सेवा आपके जीवन का व्रत है। सन् 1920 से ही आपने देश सेवा कार्यों में दिल खोलकर भाग लेना आरम्भ कर दिया और 1932 के आन्दोलन में विशेष भाग लिया और जेल यात्रा की। सन् 1942 के भारत छोड़ो स्वतंत्रता आंदोलन में आप कूद पड़े। परिणाम-स्वरूप सन् 1973 में स्वतंत्रता सेनानी के रूप में भारत सरकार ने आपको 'ताम्र पत्र' भेंट किया।

कांग्रेस संगठन कार्यों में आपकी योग्यता निखर कर जनता के सामने आई। वर्षों तक आप दरीबा कांग्रेस कमेटी के प्रधान रहे और दिल्ली जिला कांग्रेस कमेटी के भी प्रधान रहे। अनेकों बार आप दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये। दिल्ली प्रदेश पोलिटिकल कांग्रेस दल की स्वागत समिति के आप अध्यक्ष थे। आप की कर्तव्यनिष्ठा, सूझबूझ और संगठन प्रतिभा से प्रेरित होकर कांग्रेस दल ने दिल्ली असेम्बली, नगर पालिका तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चुनावों का बहुत बड़ा बोझ आपके कंधों पर डाला और आपने बड़ी योग्यता और सफलता पूर्वक इस गुरुतर कार्य को निभाया।

फलतः आपका सर्वप्रियता कांग्रेस क्षेत्रों में इस दर्जा बढी कि आप सन् 1931-34, 1937-39, 1945-51 में दिल्ली नगर पालिका तथा उसकी कार्यकारिणी के सदस्य निर्वाचित होते रहे और 1948-49 में इसके वाईस प्रेजिडेंट भी चुने गये। कई बार आपको नगर-पालिका की शिक्षा उपसमिति का प्रधान भी चुना गया। इस पद पर आतीन होकर आपने दिल्ली में प्रथम बार शारीरिक तथा सामाजिक शिक्षा आरम्भ की। जब सन् 1947 में दिल्ली में साम्प्रदायिक दंगे हुए

तो आपको आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया और पाकिस्तान से आये शरणार्थियों के पुनर्स्थापन के लिए गठित की गई समिति का सदस्य भी चुना गया।

वास्तविकता यह है कि ला० डिप्टीमल जी जैन का प्रत्येक द्वास जन सेवा में गुजरा है। आप निम्न सस्थाओं के प्रधान रहे :

1. जैन शिक्षा बोर्ड 2. कार्यकारिणी प्राचीन श्री अग्रवाल दिगम्बर जैन पचायत 3. जैन को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड 4. पुस्तक चयन समिति, दिल्ली प्रदेश 5. जैन हायर सैकेंडरी स्कूल, दरियागज।

उपप्रधान :

1. दिल्ली लायब्रेरी एसोसियेशन 2. दिल्ली युनाइटेड चैम्बर आफ ट्रेड एसोसियेशन 3. दिल्ली प्रदेश भगवान् महावीर 2500 वीं निर्वाण महोत्सव समिति 4. दिल्ली प्राकृतिक चिकित्सा परिषद्।

आप दिल्ली प्रशासन द्वारा नियुक्त कई कमेटियों के भी प्रमुख सदस्य रहे। इस समय आप निम्न सस्थाओं के प्रधान हैं :—

1. जैन सभा धर्मार्थ ट्रस्ट (रजि.) माडल टाउन,
2. जैन सभा, माडल टाउन,
3. दिल्ली अहिंसा शिक्षक सघ (सस्थापक व सरक्षक)

व्यवसाय आपके जीवन-निर्वाह का आधार रहा है। वस्तुतः आपने अपने भिन्न-भिन्न व्यवसायों में भी सत्य, न्याय और नीति का कीर्तिमान स्थापित किया है। आप दिल्ली बिल्डिंग मैटीरियल मर्चेन्ट एसोसियेशन के सर्वप्रथम प्रधान चुने गये।

अगुव्रत शास्ता आचार्य श्री तुलसी जी, मुनि सुशील कुमार जी, मुनि राकेश कुमार जी आदि महान् सन्तों के निकट सम्पर्क में आकर आपने जैन धर्म व समाज की विशेष सेवा की।

आपने सन् 1965-66 में अहिंसा शिक्षक सघ दिल्ली की नीव डाली। डा० डी० एस० कोठारी भूतपूर्व चेयरमैन यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमिशन इसके सरक्षक बने। शिक्षा क्षेत्र में इस नवोदित सस्था ने महत्वपूर्ण



कार्य किये। शिक्षा निदेशालय की सहायता से स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों से जिनमें अण्डा, माँस मछली के प्रयोग का प्रचार था, वे सभी उल्लेख व स्थल हटा दिये गये। ला० डिप्टीमल जी जिस भी कार्य को अपने हाथ में लेते थे सफलता उनके कदम धूमती थी। आपने अध्यापकों के मानसिक स्तर को ऊँचा करने के लिए अनेक गोष्ठियों और शिविरों का आयोजन भी किया।

आपका जीवन सयमी है। दो दशकों से आपने अन्नाहार का त्याग कर रखा है। आपका प्रत्येक क्षण जन सेवा में बीता है। आपका आदर्श जीवन युवा पीढ़ी का उचित मार्ग-दर्शन करता है।

आप अदम्य उत्साही हैं, परन्तु भगवान् महावीर के 2500 वे निर्वाणाब्द महोत्सव में, जिसकी दिल्ली प्रदेश समिति के आप उप-प्रधान थे, अत्यधिक परिश्रम करने के कारण आप पक्षाघात का शिकार हुए। चलना फिरना अब आपके लिए कठिन हो गया है परन्तु आपके सद्बिचार और मनोबल उन्नति पर हैं।

आपके पद चिन्हों पर चलने वाले, आज्ञाकारी, समाजसेवी तथा कुशल व्यवसायी सुपुत्र श्री आदीश्वर लाल जैन बी. काम. (आनर्स), एम. ए. (अर्थशास्त्र), डिप्लोमा इन इकानामिक एडमिनिस्ट्रेशन, आपके स्वप्नों को साकार करने में कृत्सकल्प हैं।

परम आदरणीय ला० डिप्टीमल जी जैन के निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य मुझे दो दशकों से प्राप्त है। इन्हीं की विशेष प्रेरणा से यह पुस्तक लिखी गई है ताकि थोड़े शब्दों में जनसाधारण को यह बतलाया जा सके कि भारतीय सस्कृति के पोषण में 'जैनों' की कितनी महत्वपूर्ण भूमिका है। मैं इस शुभ कार्य की पूर्ति के लिये इनके मुख्य सहयोग का विशेष आभारी हूँ।

**शादी लाल जैन**

प्रिसिपल

## विषय-सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
1	श्रमण परम्परा	9
2	यति और ब्राह्मण—दो क्रांतिकारी	12
3	ऋषभ—मानवता के प्रथम शिक्षक	14
4	तीर्थंकर—ससार सागर का खिन्न	18
5 (क)	भगवान् महावीर—साधना काल	23
5 (ख)	भगवान् महावीर—अद्वितीय क्रांतिकारी महापुरुष	27
5 (ग)	भगवान् महावीर के वचनमृत	29
5 (घ)	भगवान् महावीर का कर्मवाद	37
5 (ङ)	भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित 'द्विविध धर्म'	40
6	मृत्यु कला	46
7	भगवान् महावीर—आध्यात्मिक सैनिक सेवा-दल	49
8 (क)	राज शक्ति का अहिंसा प्रचार में योगदान	64
8 (ख)	सम्राट् खारवेल	64
8 (ग)	जैन धर्म का विस्तार	68
9	जैन धर्म का प्रभाव क्षेत्र	75
10	जैन धर्म का विकास—कारण	79
11 (क)	जैन धर्म का ह्रास—कारण	82
11 (ख)	जैन धर्म—ह्रास की रोकथाम कैसे हो ?	89
12 (क)	जैनो की साहित्य सेवा	99

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
12 (ख)	जैन धर्म शास्त्र—दिगम्बर जैन समाज की मान्यता	102
13	जैनाचार्यों की साहित्य सेवा	104
14 (क)	जैन पुराण, जैन कथा साहित्य, जैन व्याकरण	112
14 (ख)	साहित्य सेवी जैनाचार्य	120
15 (क)	जैन कला और पुरातत्व	125
15 (ख)	जैन कला और पुरातत्व	135
15 (ग)	जैन कला और पुरातत्व	136
16	जैन चित्र कला	153

श्रमण परम्परा का उदय कब हुआ यह कहना अति कठिन है ! किन्तु हमें जब से भारतीय सस्कृति एवं इतिहास की झलक दिखाई देती है, तभी से श्रमण परम्परा का उल्लेख प्राप्त होता है ।

वैदिक साहित्य में श्रमण परम्परा के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं, इतना ही नहीं अनेक बातों में वैदिक सस्कृति श्रमण परम्परा से प्रभावित होती है । इस प्रसंग में भारतीय सस्कृति के निष्णात विद्वान् डा० वामुदेव शरण अग्रवाल के विचार महत्वपूर्ण हैं :—

“इन पुराणों से हमारा तात्पर्य यह बतलाना है कि भारतीय सस्कृति में निवृत्तिधर्मी श्रमण परम्परा और प्रवृत्ति मार्गी गृहस्थ परम्परा दोनों बटी हुई रस्सियों की तरह एक साथ विद्यमान रही और दोनों में बहुत कुछ आदान-प्रदान चलता रहा । श्रमण परम्परा के कारण ब्राह्मण धर्म ने वानप्रस्थ और सन्यास को प्रश्रय दिया ।”

**ऋषि, मुनि — दो रत्न**

भारतीय परम्परा ऋषियों-मुनियों की परम्परा है । ऋषि और मुनि दोनों ज्ञानी और आत्म-द्रष्टा माने जाते हैं । ससार के प्राचीनतम धर्म-ग्रन्थ ‘वेद’ में ऋषि तथा मुनि दोनों का वर्णन है ।

‘ऋषि’ को मन्त्र-द्रष्टा की सजा दी जाती है । वह जंगल में निवास करता है, हवन आदि से देवताओं को प्रसन्न करता है और पवित्र जीवन व्यतीत करता है । ऋषि प्रायः पत्नी तथा बच्चों सहित बन में रहकर सव्योपासना करता है ।

‘मुनि’ आत्मज्ञता में बहुत आगे है। वह प्रायः अन्तर्मुखी है। शरीर एवं वस्त्र का उसे ध्यान नहीं है। वह नगा भी रह सकता है। उसे बाहरी स्नान-मञ्जन की आवश्यकता महसूस नहीं होती। घू कि वह सदा आत्म-चित्तन में लीन रहता है, मनन करता है अतएव वह मुनि है। मुनि पूर्ण ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता है, पूर्ण अहिंसक है, पूर्ण अपरिग्रही है।

‘वेद’ में ‘वातरशना’ मुनियों का वर्णन आता है। ‘केशी’ मुनि को वातरशना मुनियों में सर्वप्रथम माना गया है। केशी और केसरी एक ही अर्थ के द्योतक हैं। चौदहवें कुलकर (मनु) ‘नामि’ के पुत्र ‘ऋषभ’ की महिमा वेदों ने बहुत गाई है। ‘केशी, केसरी, केसारया नाथ’ ऋषभ भगवान् के गुणवाचक शब्द हैं। ऋषभ एक ऐसे अवतारी पुरुष हैं जिनका आदर वैदिक संस्कृति व श्रमण संस्कृति समान रूप से करती है।

आचार्य की दृष्टि से ‘श्रमण’ का दूसरा नाम ‘मुनि’ ही है। श्रमण आत्मविकास के लिए अत्यन्त परिश्रम करके एवं जागरूक रह कर अन्तर्ज्योति को प्रज्वलित करता है। वह अपनी इच्छाओं का निरोध करके प्राणिमात्र का हित चाहता है।

सेवा, परोपकार और धर्म प्रचार में वह जीवन का आनन्द अनुभव करता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह उसके आजन्म अभिन्न सखा हैं। ‘मुनि’ ऐसी श्रमण संस्कृति का एकमात्र प्रतीक है। श्रीमद्भागवत में वातरशना श्रमणों को आत्मविद्याविशारद, ऋषि, शान्त, सन्यासी और श्रमण कह कर ऊर्ध्वगमन द्वारा उनके ब्रह्मलोक में जाने की बात कही है।

बौद्ध धर्म में बताया कि “श्रमण चाहे भाषण कम करे किन्तु तदनुसार धर्म का आचरण करता हो, राग द्वेष से मुक्त हो। जो शान्त-

दान्त, नियम-तत्पर, ब्रह्मचारी और सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति अहिंसक हो। जो बाह्य प्रदर्शन मात्र के लिए श्रमणत्व स्वीकार न करता हो और जो समर्पण वाला हो।”

मेगास्थनीज कहता है कि श्रमण ब्राह्मणों और बौद्धों से भिन्न हैं। श्रमण शब्द के तीन अर्थ हैं—

श्रम—परिश्रम करके जो मुक्ति प्राप्त करे।

सम—सभी प्राणियों के प्रति समता रखे।

शम—इन्द्रिय जयी हो।

श्रमण साधुओं का सर्वत्र वर्णन मिलता है।

वैदिक और श्रमण संस्कृति के मेल से ही भारतीय संस्कृति उज्ज्वल हुई है। वस्तुतः दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं। दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। यदि वैदिक संस्कृति को मूल रूप में शरीर की सजा दें तो श्रमण संस्कृति को उसकी आत्मा कह सकते हैं। ऐसी समन्वयात्मक दृष्टि ही भारतीय संस्कृति को गौरवान्वित कर सकती है।

## यति और ब्रात्य— दो क्रांतिकारी

ऋग्वेद में मुनियों के अतिरिक्त यतियों का उल्लेख भी बहुतायत से मिलता है। जैन आगमों (शास्त्रों) में 'यति' का वर्णन जगह-जगह पर आया है जो आज तक प्रचलित है। आरम्भ में ऋषि-मुनियों और यतियों के बीच तालमेल रहा और समाज में वे विशेष रूप से पूजे जाते रहे।

यति को काम-क्रोध रहित संयतचित्त व वीतराग कहा गया है। बाहरी क्रिया-काण्ड उन्हें पसन्द नहीं है।

अथर्ववेद के पन्द्रहवें अध्याय में 'ब्रात्यो' का विशेष वर्णन आया है वे अपने समय की प्राकृत भाषा बोल सकते थे। 'ब्रात्य' वैदिक विधि से 'अर्दाक्षित व सस्कारहीन' विशेषणों से उपयुक्त होते थे। वे ज्याहुद (प्रत्यचा रहित घनुष) धारण करते थे। मनुस्मृति में लिच्छवि, नाथ, मल्ल आदि क्षत्रिय जातियों को ब्रात्यो में गिना गया है।

यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाये तो परिणाम यह निकलता है कि 'ब्रात्य' भी श्रमण परम्परा के साधु व गृहस्थ थे। जैन धर्म के मुख्य पाँच नियमों—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह को व्रत कहा गया है। उन्हें ग्रहण करने वाले श्रावक 'देश विरती या अणुव्रती' और मुनि महाव्रती कहलाते हैं। जो श्रावक विधिवत् 'व्रत' ग्रहण नहीं करते, तथापि धर्म में श्रद्धा रखते हैं वे अविरत सम्यग्दृष्टि कहे जाते हैं। इसी प्रकार के व्रतधारी 'ब्रात्य' कहे गये, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि वे हिंसा तथा यज्ञ-विधियों के नियम से त्यागी होते

है । इसी कारण से उपनिषदों में कही-कही ब्राह्मणों की अधिक प्रशंसा की गई है । ‘प्रश्नोपनिषद्’ में कहा गया है—ब्राह्मण्यस्त्वं प्राणैक ऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः । हिन्दी में ‘शंकर भाष्य’ में ब्राह्मण का अर्थ स्वभावतः एक शुद्ध ‘इत्यभिप्राय’ किया गया है । अतः सिद्ध हुआ कि ‘यति और ब्राह्मण’ अपने समय में त्यागमूलक समाज का प्रतिनिधित्व करते थे । इस काल के त्याग-प्रधान प्रवृत्ति के सवाहक ‘श्रमण संस्कृति’ के उपासक ही हो सकते थे जो ‘यति तथा ब्राह्मण’ जैसे भिन्न भिन्न नामों से पुकारे गये ।

श्रमण संस्कृति के मुनियों, यतियों, ब्राह्मणों की भारतीय समाज को यह अद्वितीय देन है कि उन्होंने भाषाई और बाहरी संस्काराडम्बरों में पड़ने की अपेक्षा सीधी-सादी प्रचलित लोकभाषा में अहिंसा के माध्यम से आत्म-गुणों का विकास करने का नारा लगाया । उन्होंने सादगी, सच्चाई और मानसिक सफाई की छाप समाज में जन-जन के हृदय पर लगाई ।



## ऋषभ-मानवता के प्रथम शिक्षक

पुराणों का कथन है कि चैत्र वदी ६ को महाराज नाभि की गुणवती महारानी मरू देवी के गर्भ से एक अत्यन्त तेजस्वी, पराक्रमी तथा भाग्यशाली बालक का जन्म हुआ। कहते हैं कि इस होनहार बालक के दाहिने पैर में वृषभ (बैल) का चिह्न था इसलिए उनका नाम वृषभदेव अथवा ऋषभदेव रखा गया।

युग बदल रहा था। लोगों की खाद्य समस्या कल्पवृक्षों से पूरी होती नजर नहीं आती थी। कल्प वृक्षों की संख्या तेजी से कम हो रही थी। लोगों की घबराहट बढ़ी और बदलती हुई परिस्थिति का वे सामना न कर सके। उनकी दृष्टि युगपुरुष ऋषभदेव पर पड़ी।

ऋषभदेव ने उपस्थित समस्या का विश्लेषण किया। उन्होंने लोगों को अन्नोत्पादन के लिए 'कृषि' का उपदेश दिया और कहा जिस प्रकार एक अनार को चीरने से सैकड़ों रसयुक्त दाने प्राप्त होते हैं इसी प्रकार पृथ्वी में हल चला कर और बीज बोकर आप असंख्य दाने प्राप्त करके अपनी भोजन समस्या को हल कर सकते हैं।' इस प्रकार ऋषभ 'अहिंसक संस्कृति' के प्रथम विधाता हुए जिन्होंने शाकाहारी विश्व की रचना की। इसके अतिरिक्त उन्होंने नाना प्रकार के वृक्षों व औषधियों की उपयोगिता का ज्ञान कराया।

जीविकोपार्जन एवं सामाजिक जीवन गुजारने के लिए ऋषभ ने लोगों को 'असि' (अपनी रक्षा हेतु अस्त्र शस्त्र चलाने की विद्या) 'मसि' (विद्योपार्जन) कृषि (खेती, पशु, पालन) वाणिज्य, नृत्य, गायन

तथा शिल्प आदि विद्याये सिखायीं । कृतज्ञतापूर्वक सभी लोगों ने ऋषभ को 'प्रजापति' की उपाधि से विभूषित किया ।

ऋषभ ने 'विवाह' प्रथा का श्रीगणेश किया । उनके अनेक पुत्र पुत्रियाँ हुयी । उनके पुत्रों में 'भरत' और 'बाहुबलि' के नाम उल्लेखनीय है । भरत पहले चक्रवर्ती राजा हुए । बाहुबलि ने ससार त्याग कर अनुपम तपस्या की जिसे सुन कर रोमाँच हो आता है । अन्त में समस्त कर्मों को समाप्त करके आप मुक्ति को प्राप्त हुए । मंसूर राज्य (कर्णाटक) में श्रवणबेलगोल में बाहुबली की ५७ फुट ऊँची पाषाण मूर्ति १० वीं शताब्दी में चामुण्डराय सेनापति द्वारा निर्मित लाखों पर्यटकों की श्रद्धाभक्ति का केन्द्र बनी हुई है और ससार में जैन वास्तुकला का एक आश्चर्यचकित आदर्श उपस्थित करती है ।

ऋषभ महाराज की 'ब्राह्मी और सुन्दरी' दो गुणवती कन्याये हुयी । भारत की लिपियों की सिरमौर 'ब्राह्मी लिपि' की आविष्कर्त्री यही ऋषभ पुत्री ब्राह्मी ही है । भ० ऋषभदेव ने अपनी बड़ी पुत्री ब्राह्मी को अक्षर विद्या सिखाई जो उसके नाम से ब्राह्मी लिपि प्रसिद्ध हुई । सम्राट् अशोक ने उसका नाम अशोक लिपि रखा । गुजरात के नागर ब्राह्मणों ने उसका नाम नागरी रखा । आदर सूचक भाव प्रकट करने के लिए देव शब्द का नाम प्रयोग किया गया इसलिए देवनागरी नाम से यह लिपि प्रसिद्ध हुई । इसी लिपि ने भारत की अधिकांश लिपियाँ जैसे शारदा, कश्मीरी, गुरुमुखी, गुजराती, बंगला, उड़ीसा, आसामी, महाजनी और मुण्डा प्रचलित हुयी ।

ब्राह्मी लिपि का पहला शिलालेख राजस्थान के बडरी गाव से प्राप्त हुआ है जो भ० महावीर स्वामी के निर्वाण के ८४ वें वर्ष में लिखा गया है ।

दूसरी पुत्री सुन्दरी को उन्होंने अक विद्या सिखाई, यही से अरब देश वालो ने गिनती सीखी जो उसे हिन्दसा (हिन्द से याद आई) कहते है और उनसे ही रोम वालो ने सीखी ।

-सुन्दरी ने 'अकगणित' का अनुष्ठान किया । ऋषभदेव के अन्य पुत्रो ने अलकार, छंद, व्याकरण, साहित्य, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि विषयो को उन्नत किया ।

समय बीतने पर महाराज ऋषभदेव ने अयोध्यापति की उपाधि से विभूषित हो कर सुख वैभव से भरपूर राज्य किया और आश्रित प्रजा को सुखी बनाकर 'कर्म-युग' की नींव डाली ।

ऋषभ महाराज को इन्द्रिय सुख-वैभव का जीवन अधिक ग्रासित नहीं कर सका । वह इन्द्रियगत सुख-वैभव की क्षणभंगुरता और असारता को पहचानते थे । एक विशेष घटना ने उनकी जीवन-चर्या बदल दी, उन्होने सुख-सम्पत्ति, पूर्ण राज्य वैभव तथा कुटुम्बी जनो को छोड़ वैराग्य का दामन पकड़ा और कठोर तपस्या करके केवल ज्ञान केवल दर्शन की प्राप्ति की और अततः कैलाश पर्वत पर समाधिस्थ होकर पार्थिव शरीर को त्याग दिया । ऋषभ ससार के आवागमन के चक्र से सदा के लिए मुक्त होकर सिद्ध, बुद्ध, अजर, अमर, सच्चिदानन्द परमात्मस्वरूप बन गये । उन्होंने कैलाश पर्वत से मुक्ति को प्राप्त कर शाश्वत सुख के अधिकारी शिव पद को प्राप्त किया ।

भ० ऋषभदेव ने माघ कृष्ण चतुर्दशी को निर्वाण पाया । वैष्णव धर्म में शिवरात्रि फाल्गुण कृष्ण चतुर्दशी को मनाई जाती है । यह एक माह का अन्तर उत्तर और दक्षिण के पंचांगों के कारण है । दक्षिण में शुक्ल पक्ष प्रथम और कृष्ण पक्ष बाद में माना जाता है । जबकि उत्तर भारत में कृष्ण पक्ष प्रथम और शुक्ल पक्ष महीने के अन्त में माना जाता है ।

भ० ऋषभदेव ने प्रयाग में जहाँ तपस्या की थी वह स्थान अक्षय-  
वट और उत्कृष्ट तपस्या के कारण प्रकृष्ट-याग अथवा प्रयाग नाम  
से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ ।

योगीश्वर ऋषभ ही शिव है जिन्हें सभी धर्म वालों ने अपना आदि  
पुरुष स्वीकार किया है ।

ऐसे ‘भगवान् ऋषभदेव’ (आदिनाथ) को प्रत्येक भू-मानव शत-  
शत प्रणाम करे और उनके पद-चिह्नो पर चलकर स्व-पर कल्याण-  
रूढ होकर सच्ची श्रद्धाजलि अर्पित करे तथा उनके समान कर्म-निर्जरा  
करते हुए मोक्ष पद प्राप्त करे ।

“मानवता के जनक ऋषभ भगवान् की जय हो ।”

## तीर्थंकर-संसार सागर का खिवैया

अधेरी रात थी। आकाश पर बिजली कड़क रही थी। नदी में ऊँची ऊँची तरंगें उठ रही थीं। ऐसे समय में एक यात्री आया, उसने नदी के उस पार जाना था। उसे अवश्यमेव नदी पार उतरना था।

यात्री जोर से चिल्लाया, “है यहाँ कोई चतुर नाविक जो मुझे पार ले जाये?” यात्री की आवाज सुनी अनसुनी हो गई। आकाश में बिजली जो चमकी तो उसे थोड़ी दूर पर दो-तीन नावें खड़ी दिखाई दीं। यात्री उनके पास गया। बड़ी अनुनय विनय की परन्तु कोई नाविक अपनी नाव को और अपने आपको इस जोखिम में डालने के लिए तैयार न हुआ।

इतने में एक दिव्य घटना हुई। सामने से एक विशाल-काय तथा देदीप्यमान ललाट वाला व्यक्ति आता दिखाई पड़ा। उस दिव्य पुरुष ने कहा, “यात्री, क्यों चिन्ता में डूबे हुए हो? आओ, मेरी नाव में बैठो। हजार बिजली कड़के, नदी में तूफान आए परन्तु तुम्हारा बाल-बांका नहीं होगा।

यात्री प्रभावित हुआ और विश्वास करके उस दिव्य नाविक की नाव में बैठ गया। विकराल नदी-तरंगों और भीषण जल-जन्तुओं के मध्य में से नाविक अपने कला-कौशल से नाव को नदी के उस पार ले गया।

यात्री ने सुख की साँस ली और कहा, “मेरे रक्षक! मेरे देवता कैसे आपका धन्यवाद करूँ? बदले में आपकी क्या सेवा-चाकरी करूँ? कितनी राशि यात्रा-शुल्क मैं दूँ?”

दिव्य नाविक मुस्कराया और कहने लगा, भोले यात्री, दुःख रूपी संसार सागर में पड़े यात्रियों को मैं सदा से नदी पार कराता आ रहा हूँ। मैं बदले में कोई शुल्क आदि नहीं लेता। 'आप सुरक्षापूर्वक पार हुए'—बस यही मेरा शुल्क है।”

ऐसे ही दिव्य खिवैया तीर्थकर कहलाते हैं जो स्वयं कर्मबंधन से मुक्त होकर अन्य संसारी जीवों को निःस्वार्थ भाव से इस संसार से पार कराते हुए अपने समान आत्मद्रष्टा और कृतकृत्य बनाते हैं।

जैन परम्परा में, इस अवसर्पिणी काल में, चौबीस तीर्थकर हुए हैं। प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव या आदिनाथ भगवान् का जिक्र हम पहले कर आए हैं। इक्कीसवें तीर्थकर श्री नमिनाथ, बाईसवें श्री अरिष्टनेमि नाथ, तेईसवें श्री पार्श्व नाथ और चौबीसवें श्री महावीर स्वामी हुए। भगवान् ऋषभ का वर्णन भागवत् पुराण तथा वेदों में आता है। शेष तेईस तीर्थकरों का हाल जैन पुराणों तथा आगमों में फुटकर रूप में आता है। इतिहास २१ वें तथा २२वें तीर्थकर के सम्बन्ध में साधारण सी रोशनी डालता है, २३वें तीर्थकर श्री पार्श्व नाथ जी महाराज को तो ऐतिहासिक महापुरुष मान लिया गया है। भगवान् महावीर का तो विशाल साहित्य हमें प्राप्त है ही, यद्यपि इसको भी कई विद्वान् लोग बचाखुचा साहित्य ही मानते हैं।

अब हम यह जानना चाहेंगे कि २१वें तीर्थकर से लेकर २४वें तक भारत को तथा विश्व को क्या निधि प्राप्त हुई ?

**इक्कीसवें तीर्थकर भगवान् नमिनाथ**—नमि मिथिला के राजा थे। हिन्दू पुराणों में उन्हें 'राजा जनक का पूर्वज' माना गया है। नमि ने प्रब्रज्या (साधु वृत्ति) ग्रहण की। नमि की अनासक्त वृत्ति मिथिला राजवंश में 'जनक' तक पाई जाती है। इसी आध्यात्मिक परम्परा के कारण उनका वंश तथा समस्त प्रदेश ही 'विदेह' (देह से निर्मोह, जीवन-मुक्त) कहलाया और उनकी अहिंसात्मक प्रवृत्ति के कारण ही उनका

धनुष प्रत्यञ्चाहीन रूप में उनके क्षत्रियत्व का प्रतीक मात्र सुरक्षित रहा। सम्भवतः यही वह जीर्ण धनुष था जिसका श्री रामचन्द्र जी ने चिल्ला चढ़ाया और उसे तोड़ डाला। व्रात्यो के ज्याहूद (प्रत्यञ्चाहीन धनुष) का यही ठीक मेल बैठता है जिसका उल्लेख पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है।

## २. बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) :—

शौरीपुर (आगरा उ० प्र०) के यादव वंशी राजा अधक वृष्णी के समुद्रविजय ज्येष्ठ पुत्र और वसुदेव सबसे छोटे पुत्र हुए। समुद्र विजय नेमिनाथ के पिता थे और वसुदेव के पुत्र हुए 'वामुदेव कृष्ण'। राजा जरासभ के आतंक से यादव शौरीपुर को छोड़कर द्वारिका में जा बसे।

राजकुमार नेमिनाथ का विवाह सम्बन्ध गिरनार (जूनागढ़) के राजा उग्रसेन की कन्या राजुलमती (राजीमती) से निश्चित हुआ। बारात जब वधू के घर पहुँची तो नेमिनाथ ने अतिथियों के हेतु मारे जाने वाले बर्दी पशुओं की दिल हिला देने वाली चीत्कार सुनी। नेमिनाथ का कोमल हृदय इस हिंसा को सहन न कर सका। उन्होंने करुणानाद से प्रेरित होकर उन बर्दी पशुओं को मुक्त कराया और ससार को असार समझते हुए, विवाह-क्रम को अस्वीकार करते हुए गिरनार पर्वत की ओर प्रस्थान किया। वहीं उन्होंने धीरे तप किया और कैवल्य प्राप्त कर प्राचीन 'श्रमण परम्परा' को पुष्ट किया।

अहिंसा को धार्मिक वृत्ति मानकर भगवान् नेमिनाथ ने इसे सैद्धांतिक रूप दिया। इनका 'पशुरक्षण आंदोलन' जूनागढ़ के निकट से आरम्भ होकर समूचे सौराष्ट्र और भारत में फैल गया। इस त्यागमूलक आंदोलन ने लोगों के नेत्र खोल दिये। आज भी सौराष्ट्र में शेष भारत की अपेक्षा बहुत कम हिंसा होती है। यह भगवान् नेमिनाथ के इस पशुरक्षण आंदोलन का ही फल है।

भ० नेमिनाथ को ही अगिरस ऋषि के नाम से वैष्णव धर्म में कहा गया है। मथुरा कर्जन म्युजियम में भ० नेमिनाथ की जो अनुपम मूर्तिया प्राप्त हुयी उनमें बीच में भ० नेमिनाथ जिनके नीचे शख का चिह्न दाये तरफ बलदेव जिनके हल का और बांये तरफ श्रीकृष्ण नारायण की मूर्ति है जिनके नीचे चक्र का चिह्न है। भ० नेमिनाथ ने आध्यात्म विद्या का उपदेश दिया।

सौराष्ट्र में युग-युगान्तर की एकत्रित अहिंसा प्रवृत्ति ने उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में महात्मा गांधी को पाया जिसने अहिंसा-चक्र से आंग्रेज खपी दैत्यो का दमन करके भारत को स्वतन्त्र कराया।

महात्मा गांधी की अहिंसा-शक्ति का श्रेय उनके सौराष्ट्री पूर्वज भगवान् नेमिनाथ को जायेगा।

### ३० तेईसवे तीर्थकर पार्श्वनाथ

पार्श्वनाथ का जन्म बनारस के राजा अश्वसेन और उनकी रानी वामा देवी (वर्मला देवी) से हुआ। बचपन से ही उन्होंने हिसामूलक अज्ञान तप का विरोध किया। गंगातट पर 'कमठ' नाम का योगी बड़े लकड़ो की धूनी रमाये और अंग-भभूत लगाये जनता के आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। उन्होंने कमठ तापस को ललकारा और कहा कि तुम्हारा तप मिथ्या है जिसमें नाग-नागिन का जोड़ा जल रहा है। जब पार्श्वनाथ ने जलती लकड़ियो में से नाग-नागिन को जलते हुए दिखाया तो कमठ का अभिमान चूर हुआ।

पार्श्व ने जब साधुवृत्ति स्वीकार की और कर्मचूर तप किया तो देवयोनि में जन्मा हुआ कमठ का वह जीव पुराने वैर-भाव का स्मरण करके अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए मुनि पार्श्वनाथ को बहुत दुःख देने लगा। उस समय नाग और नागिन ने, जो मरकर धरणेन्द्र देव और पद्मावती देवी हुए, पार्श्व मुनि पर आए उपसर्गों का निवारण किया।



श्री पार्श्वनाथ का धर्म सर्वथा व्यवहार्य था । हिंसा, असत्य, स्तेग और परिग्रह का त्याग करना—यह चातुर्याम सवरवाद' उनका धर्म था । इस धर्म का उन्होंने भारत भर में प्रचार किया । प्राचीन भारत में अहिंसा को सुव्यवस्थित रूप देने का यह सर्वप्रथम उदाहरण है ।

प्राचीन भारत में अरण्य में रहने वाले ऋषि-मुनियों के आचरण में जो अहिंसा थी, उसे व्यवहार में विशेष स्थान न था । तीन नियमों के सहयोग से अहिंसा व्यवहारिक बनी, सामाजिक बनी । भगवान् पार्श्वनाथ ने जगली जातियों तक को अहिंसक बनाया । आपने ७० वर्ष तक अहिंसा का प्रचार किया और १०० वर्ष की आयु में सम्मेल शिखर पर जाकर ७७७ ई० पू० निर्वाण प्राप्त किया । आपकी पुण्य चिरस्मृति में कृतज्ञ राष्ट्र ने सम्मेल शिखर का नाम 'पारस नाथ हिल' रख दिया है । भगवान् महावीर के माता-पिता भी पार्श्वानुयायी थे ।

भगवान् पार्श्वनाथ के 'चातुर्याम' का उल्लेख निर्ग्रंथों के सम्बन्ध में बौद्ध पालिग्रंथों में मिलता है और जैन आगमों में भी बौद्ध ग्रंथ अगः निकाय चतुक्कनिपात (वग ५) और उनकी अट्टकथा में उल्लेख है कि गौतम बुद्ध का चाचा 'बप्प शाक्य, निर्ग्रंथ श्रावक था । पार्श्वपत्न्यो तथा निर्ग्रंथ श्रावकों के और भी अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे निर्ग्रंथ धर्म' की सत्ता भगवान् बुद्ध से पूर्व मली-मौति सिद्ध हो जाती है ।

#### ४. चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर.

विस्तार के लिए कृपया इसी पुस्तक का अगला अध्याय देखिए ।

(सम्यक् ज्ञान-दर्शन-तप-आचार को सजीव मूर्ति एवं प्राणिमात्र के हितैषी)

भारत के प्राचीन इतिहास में ईसवी पूर्व सन् ५६६ की सुखद घटना है जबकि चैत्र शुक्ला त्रयोदशी की मध्यरात्रि की बेला थी। विदेहराज (बिहार) में कुण्डपुर नामक नगर था। उसके उत्तरी भाग में क्षत्रिय कुण्ड ग्राम स्थित था। ज्ञातृवशीय महाराज सिद्धार्थ की रानी त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि से एक अपूर्व बालक ने जन्म लिया। ऋतुराज वसत अपने यौवन की अंगड़ाई ले रहा था। राज्य में धन-धान्य, सुख-ऐश्वर्य में दिनो-दिन वृद्धि होने लगी थी। अतः नव-जात शिशु का नाम-संस्कार वर्द्ध-मान से किया गया।

‘होनहार बिरवान के होत चीकने पात’। वर्द्धमान, अपने व्यवहार में अत्यंत बुद्धिमान विनयी, सयमी, ज्ञान-वान, धीर, वीर और साहसी सिद्ध हुए। उनके माता पिता भगवान् पार्श्वनाथ के उच्च सिद्धान्तों में आस्था रखते थे। अतः उनका पालन पोषण अहिंसा, दया, करुणा और संयमशीलता के वातावरण में हुआ। समस्त राजसी सुख-वैभव उपलब्ध होने पर भी वर्द्धमान अलिप्त थे, अनासक्त थे, सात्विक थे। परिवार का मोहपाश उन्हें बाँध न सका। अपने माता-पिता के स्वर्गारोहण के पश्चात् अपने बड़े भाई नदिवर्द्धन की भावनाओं का आदर करते हुए केवल दो वर्ष के लिये मुनिव्रत ग्रहण न करने का संकल्प ले लिया

और दान, ध्यान व सेवा में रत रहकर गृहस्थ योगी की भाँति समय बिताया ।

तीस वर्ष की भरपूर जवानी में, सबकी सहमति से, वैराग्य-मार्ग अपनाते हुए गृह-त्याग किया ।

### ॥ महावीर की कठोर साधना ॥

बारह वर्ष, पाँच मास और पन्द्रह दिन तक कठोरतम साधना की भट्टी में डाल दिया अपने आपको वर्द्धमान महावीर ने । तप की इस दीर्घ-कालीन अवधि में कोई ३४६ दिन इस साधक ने आहार किया होगा । दो दिन की अवधि से लेकर छः मास की अवधि पर्यन्त इन्होंने अनेक निराहार व्रत रखे ।

वह पूर्ण असग्रही थे । वह क्षमाशूर थे । परन्तु अनेकों उपसर्ग आने पर भी वह अडोल रहे ।

वह प्रहर-प्रहर किसी लक्ष्य पर एकाग्र हो ध्यान करते । लोग उनकी निंदा करते, परन्तु वह चुप रहते । कई व्यक्ति रोष में आकर उन्हें पीड़ित करते, महावीर समभाव से इन सब उपसर्गों को सहते ।

महावीर ने अनासक्ति के लिए शरीर की परिचर्या को भी त्याग रखा था । संग-त्याग की दृष्टि से पात्र में भोजन नहीं करते और न वस्त्र ही पहनते ।

उनका दृष्टि सयम लाजवाब था । वह चलते-चलते इधर-उधर नहीं देखते, पीछे नहीं देखते, बुलाने पर भी नहीं बोलते, केवल मार्ग को देखते हुए चलते थे ।

वह प्रकृति विजेता थे । सख्त सर्दी हो या गर्मी वह नंगे शरीर धूमते । वह अप्रतिवद्ध बिहारी थे, परिव्राजक थे । बीच-बीच में वह

शिल्प-शाला, भोंपड़ी, सूना घर, श्मशान, वृक्ष मूल आदि स्थानों में ठहरते। वह साधना काल में समाहित हो गये। अपने आप में समा गये वह दिन रात यतमान रहते। उनका अन्तःकरण निरंतर क्रियाशील एवं आत्मान्वेषी हो गया।

महावीर ने पृथ्वी, पानी, अग्नि वायु, वनस्पति और चर-जीवों का अस्तित्व जाना। उन्हें सजीव मान कर उनकी हिंसा से विलग हो गये।

वह अप्रमत्त बन गये, दोषकारक प्रवृत्तियों से हटकर सतत् जागरूक बन गये।

ध्यान के लिये समाधि, यतना और जागरूकता सहज अपेक्षित हैं। महावीर ने नीद पर भी विजय पा ली। वह दिन रात का अधिक भाग खड़े रहकर ध्यान में बिताते। विश्राम के लिए थोड़ा समय लेटते तब भी नीद नहीं लेते थे। जब नीद सताने लगती तो फिर खड़े होकर ध्यान में लग जाते। कभी कभी तो सर्दियों की रातों में घड़ियों तक बाहिर रहकर नीद टालने के लिये ध्यान मग्न हो जाते।

महावीर ने पूरे १२½ वर्ष के साधना काल में बहुत ही कम नीद ली। शेष सारा समय उनका ध्यान और जागरण में बीता।

महावीर तितिक्षा की परीक्षा-भूमि थे। दृष्टिविष फेकने वाला विकराल 'चण्डकोशिक सर्प' भी उनका कुछ न बिगाड़ सका, न उन्होंने रोष किया और न ही वह विचलित हुए। वह समभाव में कायम रहे। अन्य वनैले जीव जन्तुओं के उपसर्ग तो उनपर सारे साधना-काल में होते रहे।

वह अधिकतर मौन रहते और जनता का कोप-भाजन बनते। वह कभी सक्षेप में उत्तर देते भी तो इतना कहते "मै भिक्षु हूं।"

महावीर एक अपूर्व साधक थे। वह कष्टों को निमंत्रित करते। थे

वह कष्टो को विशुद्धि के लिये वरदान मानते थे और उन्हें धैर्य से झेलते थे। अधीर को कष्ट सहना पड़ता है, परन्तु धीर कष्ट को सहर्ष सहते हैं। जो जान बूझकर कष्टो को न्यौता दे, उसे उनके आने पर अरति (दुःख) और न आने पर रति (प्रसन्नता) नहीं हो सकती। रति और अरति—ये दोनों—साधना की बाधाएँ हैं। महावीर इन दोनों को पचा लेते थे। वह मध्यस्थ थे।

देवो ने भी उनके समक्ष घोर कष्ट उपस्थित किये, उन्हें लक्ष्य से विचलित करने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ी। उन्होंने गन्ध, शब्द स्पर्श सम्बन्धी अनेको कष्ट सहे। महावीर ने इन समस्त कष्टो को 'समभाव' से सहन किया। साधना सफल होने को थी।

ग्रीष्म ऋतु का वैशाख महीना था। शुक्ल दशमी का दिन था। पिछले पहर का समय, विजय मुहूर्त और उत्तरा फाल्गुनी का योग था। जर्मिय ग्राम नगर के बाहर ऋजु बालिका नदी के उत्तरी तट पर, 'इयामाक गाथापति' की कृषि भूमि में, व्यावर्त नामक चैत्य के निकट शाल वृक्ष के नीचे गोदोहिका आसन में बैठे हुए, ईशान कोण की ओर मुह करके सूर्य का आताप ले रहे थे। दो दिन का निर्जल उपवास था। वह 'शुक्ल ध्यान' में लीन थे। बारहवी भूमिका (गुणस्थान) में पहुँचते ही उनके मोह का बन्धन पूर्णतः टूट गया। वह वीतराग बन गये। तेरहवी भूमिका का प्रवेश द्वार खुला। वही ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय के बन्धन भी पूर्णतः टूट गये। वह अनन्त ज्ञानी, अनन्त दर्शी, अनन्त आनन्दमय तथा अनन्त वीर्ययुक्त बन गये।

महावीर "केवली भगवान्" बन गये।

## भगवान् महावीर— अद्वितीय क्रांतिकारी महापुरुष

भगवान् महावीर की क्रांति अहिंसामूलक थी। अतः वह सर्वतो-  
मुखी कल्याणकारी थी। आध्यात्मिकता, दर्शन-शास्त्र, समाज व्यवस्था  
और भाषा के क्षेत्र में उनकी देन बहुमूल्य है।

उन्होंने तत्कालीन तापसों की तपस्या के बाह्यरूप के बदले बाह्या-  
भ्यंतर रूप प्रदान किया। तप के स्वरूप को व्यापकता प्रदान की।

पारस्परिक खण्डन मण्डन में निरत दार्शनिकों को 'अनेकान्तवाद'  
का महामंत्र दिया।

सद्गुणों की अवहेलना करने वाले जन्मगत 'जातिवाद' पर कठोर  
प्रहार कर गुण-कर्म के आधार पर जाति व्यवस्था का प्रतिपादन  
किया। मनुष्य मनुष्य के बीच समानता कायम की और भेदभाव की  
दीवारों को गिरा दिया।

किसी समय स्त्रियों को भोग की सामग्री माना जाता था। उनका  
यथोचित सम्मान न था। भगवान् महावीर ने उन्हें समानता का दर्जा  
प्रदान किया।

स्त्री को दीक्षित होने की अनुमति प्रदान कर उनके साध्वी संघ  
कायम किये।

यज्ञों में होने वाली पशु-हिंसा को बन्द कराया और कहा कि  
'आध्यात्मिक यज्ञ करो और उनमें अपनी इच्छाओं की बलि दो।'

जन-जन की प्रचलित भाषा लोकभाषा को अपने उपदेश का  
माध्यम बनाकर आत्मदर्शन रूपी सन्मार्ग का द्वार बिना भेदभाव के

सभी के लिए खोल दिया । इस प्रकार उच्च भाषाभिमान को समाप्त किया ।

साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका यह चार तीर्थ कायम किये, इनको 'सघ का नाम दिया ।

इस प्रकार भगवान् महावीर ने भारतीय समाज के समग्र माप-दण्ड बदल दिये और सम्पूर्ण जीवन दृष्टि में एक दिव्य और भव्य नूतनता उत्पन्न कर दी ।

धर्म और समाज की जो बुराइयाँ विकृत कर रही थी उन्हें समूल उखाड़ फेंका ।

साम्प्रदायिकता, विषमता अज्ञानता को दूर कर भगवान् महावीर ने भारतीय समाज को स्वस्थ एवं उदार दृष्टिकोण प्रदान किया ।

राग और द्वेष पर पूर्ण विजय प्राप्त करने वाले भगवान् महावीर ५२७ ई० पू० कार्तिक कृष्ण अमावस्या को पावापुर में निर्वाण पद को प्राप्त होकर 'सिद्ध' बन गये ।

भगवान् महावीर का उपदेश समस्त विश्व के लिये हितकारी और शांतिदायक है। यह त्रिकाल में सत्य है।

महावीर कहते हैं—गौतम ! जो जानता है, वही बधनों को तोड़ता है। जीव का चरम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति या मुक्ति-लाम है। 'सच्ची श्रद्धा' 'सच्चा ज्ञान' और 'सच्चा आचरण' यह त्रिवेणी ही मोक्ष-मार्ग का साधन है।''

सद्ज्ञान के बिना कर्म-काण्ड, तप, जप, काय-क्लेश, देहदमन निरर्थक है, हानिकारक है। क्रियाहीन ज्ञान से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।

एक व्यक्ति सड़क पर बैठा था। वह टाँगो से विहीन था परन्तु उसके नेत्रों में तेज था। वह दूर तक वस्तुओं को देख सकता था। उसे मालूम था कि जिस सड़क के किनारे वह बैठा है वह उसे गतव्य स्थान की ओर ले जायेगी। उसके मन में उल्लास था, विश्वास था, साहस था निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने का। फिर भी उसे एक लाचारी थी क्योंकि वह टाँगो से हीन था। वह किसी उपयुक्त आदमी की प्रतीक्षा कर रहा था।

सहसा उधेड़बुन में उसकी दृष्टि एक ऐसे व्यक्ति पर पड़ी जो सावधानी से धीरे धीरे आगे बढ़ रहा था। उसे ठीक मार्ग ढूँढ़ निकालने की कठिनाई पड़ रही थी। उसका पाँव कभी खाई में पड़ जाता तो कभी



लड़खड़ा जाता। उसमें त्रुटि यह थी कि वह नेत्रहीन था, तो भी अपनी लाठी के सहारे आगे बढ़ने का प्रयास कर रहा था।

लंगड़े आदमी को उस अंधे व्यक्ति से वार्तालाप करके अत्यन्त प्रसन्नता हुई क्योंकि दोनों का लक्ष्य एक था और दोनों एक दूसरे के पूरक थे। दोनों में एक न एक मूल त्रुटि थी। तय पाया कि टांग-विहीन व्यक्ति अंधे की पीठ पर सवार हो जाये और अंधा अपने नेत्रों वाले साथी के निर्देशन पर मार्ग पर आगे बड़े। अंत में वे दोनों सुविधापूर्वक अपने इच्छित स्थान पर पहुँच कर आनन्दविभोर हो गये।

इसी प्रकार सम्यक्दर्शन (श्रद्धान) और सम्यक् ज्ञान को जब सम्यक् चारित्र (आचरण) का सम्बल मिलता है तो इस त्रिपुटी (त्रिरत्न) से जीवन लक्ष्य अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है।

भगड़े का मूल “आग्रह” है। भगड़े को मिटाना बुद्धिमत्ता में शामिल है। भगड़े को मिटाने के लिए दोनों पक्षों की बात सुननी पड़ेगी। दोनों पक्षों में आंशिक सच्चाई हो सकती है।

एक पुरानी कथा है—कुछ अंधे एक हाथी के निकट गए यह जानने के लिए कि हाथी कैसा होता है ? जिसने सूँड को पकड़ा वह चिल्लाया, “हाथी साप जैसा है।” जिस अंधे व्यक्ति के हाथ में कान आया उसने कहा कि हाथी पक्षे जैसा होता है। तीसरे ने पूछ पर हाथ फेरते हुए कहा अहो ! हाथी तो रस्से के समान है। जिस अंधे का हाथ हाथी दाँत पर पड़ा उसने हाथी को डण्डे की उपमा दी। जिस अंधे का हाथ हाथी की टांग पर पड़ा उसने भुँभुलाकर कहा अरे यह हाथी है या वृक्ष ? जो अंधा हाथी के पेट को टटोल रहा था उससे यह कहते

बन पड़ा, “माइयो तुम सब गलत कहते हो वह तो सचमुच चट्टान की नाई है।”

यदि कोई नेत्रो वाला व्यक्ति उपर्युक्त नेत्र-हीनों की वार्ता सुन रहा हो तो वह उनकी भूर्खता एव अज्ञानता पर अवश्य हंसेगा परन्तु वह इस तथ्य से इनकार नहीं करेगा कि प्रत्येक अधा “आंशिक सत्य” कह रहा है। पूर्ण सत्य अथवा हाथी का पूर्ण स्वरूप तो उन की बात को मिला कर होगा।

अतः परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले अपने दृष्टिकोणों को प्रमाणित रूप से स्वीकार करना “अनेकांतवाद है। अनेकान्त सिद्धांत को व्यक्त करने वाली “सापेक्ष भाषा पद्धति” ही स्याद्वाद है। ‘स्यात्’ शब्द का अर्थ है ‘कथंचित्’ या “किसी अपेक्षा से”। जो लोग स्यात् का अर्थ ‘शायद’ करते हैं, यह उनकी भूल है।

श्रोत्र (कान), चक्षु, घ्राण, (नासिका), रसना और स्पर्शन यह पाँच इन्द्रियाँ हैं।

- 5 ‘शब्द’ श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है।
- 4 ‘रूप’ चक्षु इन्द्रिय का विषय है।
- 3 ‘गंध’ घ्राणेन्द्रिय का विषय है।
- 2 ‘रस’ रसना इन्द्रिय का विषय है।
- 1 ‘स्पर्श’ स्पर्शेन्द्रिय का विषय है।

‘मन’ इन्द्रिय नहीं है। इंद्रियों का क्षेत्र सीमित है। मन के लिए कोई क्षेत्र की मर्यादा सीमित नहीं है, वह क्षण भर में स्वर्ग नरक तथा अखिल विश्व का चक्कर काट लेता है।

भगवान् महावीर ने कहा—“हे गौतम। मन जड़ भी है और चेतन भी। द्रव्य मन बिजली का बल्ब है और भाव मन उसके अंदर प्रवेश करने वाली बिद्युत है।

शरीर का राजा और आत्मा का मंत्री होने के कारण मन कभी कभी आत्मा को मोह में फसा लेता है और इधर उधर भटकाता फिरता है। यदि वही मन वशीभूत हो जाता है तो एकाग्रता-लाम मे सहायक बनता है तथा मति ज्ञान और श्रुति ज्ञान का कारण बन जाता है।

हे महामुने। मन एक दुर्जेय शत्रु है। क्रोध, मान, माया, लोभ में चार कषाय तथा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, ये पाचो इन्द्रियाँ मिलकर शत्रु बनते है इन्हे ठीक रूप से जीतना चाहिए और सच्चा आनन्द प्राप्त करना चाहिए।

हे साधक ! मन बहुत ही साहसिक, रौद्र और दुष्ट अश्व है जो चारो और दौड़ता फिरता है। इस अश्व को धर्म-शिक्षा द्वारा अच्छी तरह काबू किया जा सकता है।

प्राचीन तत्त्वचिंतकों ने 'लेश्या' विषय पर बड़ा सुंदर विवेचन किया है जो आधुनिक मानस शास्त्रियों के लिए बड़ा रुचिकर और बोध-प्रद है।

लेश्या विचार मे यह देखा जाता है कि :—

मानस वृत्तियों का कैसा 'वर्ण' होता है ?

मनोविचारो को कितने वर्गों में बांटा जा सकता है ?

मनोविचारो का उद्गम स्थान क्या है ?

उनमें 'वर्ण' आता कहाँ से है ? इत्यादि

मानसिक चचल लहरिया 'पुद्गलों' से

सम्मिश्रित होती हैं। पुद्गल मूर्त है। वैचारिक समूह का द्रव्य रूप पुद्गलमय होता है। जैसे विचार, वैसा वर्ण। और जैसे जैसे विचार वैसे वैसे पुद्गल का आकर्षण।

साधारणतया लेश्या का अर्थ मनोवृत्ति, विचार या तरंग हो सकता है किन्तु धर्माचार्यों ने 'कर्मश्लेष' के कारणभूत 'शुभाशुभ परिणामो' को ही लेश्या कहा है जिसे निम्न उदाहरण से छः भागों में विभक्त किया गया है ।

एक ने कहा, "भाई देखो, यह सामने एक विशाल जामुन का पेड़ है । आओ इसे काटकर घराशायी कर दे और मनचाहे फल खाएँ" ।

दूसरा बोला, "सारा वृक्ष काटने से क्या लाभ ? केवल इसकी मोटी-मोटी फलदार शाखाएं ही काट लो ।"

तीसरे ने जोर से कहा, "भाई समझदारी से काम लो । जिन टहनियों तक हाथ पहुँचता है केवल उन्हे ही काटो ।

चौथे व्यक्ति ने गम्भीरता पूर्वक कहा, "भाइयो ! केवल फलों के गुच्छे ही तोड़ लो, टहनियों को हानि क्यों पहुँचाते हो ?"

पाँचवे ने अधिक सतर्क होकर कहा, "हमें तो चाहिए 'पके जामुन' वही क्यों न तोड़े ?"

छठे ने विचारपूर्वक सरल और शुद्ध मन से मार्गदर्शन करते हुए कहा, "सब लोग जरा बुद्धि से काम ले । आप सब लोग फल चाहते हैं तथा पके हुए फल चाहते हैं । ऐसे पके हुए फल तो नीची नजर से देखिए सैकड़ों की सख्या में पृथ्वी पर बिखरे हुए पड़े हैं । उन्हें बीन कर क्यों नहीं खा लेते ? मला वृक्ष को, डालियों को, टहनियों को, गुच्छों को काटने तोड़ने की जरूरत क्या है ?"

उपर्युक्त विचारों के तारतम्य के आधार पर 'छः लेश्याओं' का निम्न प्रकार से उद्भव होता है :—

कृष्ण लेश्या—मनोवृत्ति का निकृष्टतम रूप ।

नील लेश्या—कुछ अच्छी मनोवृत्ति किन्तु ईर्ष्या, असहिष्णुता, लोलुपता युक्त ।

कापोत लेश्या—मन, वचन, कर्म से वक्र परन्तु अपने स्वार्थ के साथ जीवों का भी संरक्षण करता है ।

तेजो लेश्या—नम्र, दयालु, इन्द्रियजयी । केवल अपने सुख की ही अपेक्षा नहीं रखता अपितु दूसरों के प्रति भी उदार होता है ।

पद्म लेश्या—कमल के समान अपनी सुगंधी से दूसरों को सुख देने वाला । सयमी, कषायों (क्रोध, मन, माया, लोभ) पर विजय पाने वाला, मितभाषी, सौम्य ।

शुक्ल लेश्या—अत्यन्त शुद्ध मनोवृत्ति, समदर्शी, निर्विकल्प, ध्यानी, सावधान, वीतराग ।

पहली तीन लेश्याएं त्याज्य हैं और अंतिम तीन लेश्याएं ग्रहण करने योग्य हैं ।

कषाय—कष और आय । कष का अर्थ है कर्म अथवा परिणाम में जन्म मरण । जिससे कर्मों का आय या बंधन होता है अथवा जिससे जीव को पुनः-पुनः जन्म मरण के चक्र में पड़ना पड़ता है वही 'कषाय' कहलाता है ।

जो मनोवृत्तियाँ आत्मा को क्लुषित करती हैं, जिनके प्रभाव से आत्मा अपने स्वरूप से भटक जाता है मनोविज्ञान की भाषा में वह कषाय है । आवेश और लालसा की वृत्तियाँ कषाय को जन्म देती हैं । कषाय चार प्रकार के है :—

क्रोध, मान, माया, लोभ,

(अ) क्रोध:- यह मानसिक किन्तु उत्तेजक संवेग है । यह विचार शक्ति एवं तर्क-शक्ति को शिथिल करता है । आवेश युयुत्सा (युद्ध) को

और युयुत्सा आक्रमण को जन्म देती है। आमाशय, रक्तचाप, हृदय की गति, मस्तिष्क के ज्ञानतंतु सब अव्यवस्थित हो जाते हैं। क्रोध की १० अवस्थाएं हैं जो भयंकरता उत्पन्न करती है।

(आ) अभिमान:- कुल, बल, ऐश्वर्य, बुद्धि, जाति, ज्ञान आदि अपनी किसी विशेषता का घमण्ड करना और उसे बढ़ा-चढ़ा कर कहना 'अभिमान' है। अभिमानी अपने बराबर किसी को नहीं समझता। वह अहंवृत्ति का पोषण करता है। अभिमान की १२ अवस्थाएं हैं।

(इ) माया—इसका अर्थ कपटाचार है। माया से पापाचार बढ़ता है। विश्वासघात, द्वेष और असत्यभाषण इसके निकटतम सम्बन्धी हैं। माया की १५ अवस्थाएं हैं।

(ई) लोभ—यह समस्त पापों का जनक है। इसके १६ भेद हैं। कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) आवेश की तरतम्यता और स्थायित्व के आधार पर चार चार मार्गों में बाँटे गये हैं जिनकी जानकारी होने से पाठक को बड़ा लाभ हो सकता है। क्रोध के विषय में नीचे बतलाया है। वैसा अन्य कषायों में भी समझना चाहिए —

(अ) अनंतानुबन्धी क्रोध—पत्थर में पड़ी दरार के समान जो मिटती नहीं।

(आ) अप्रत्याख्यानी क्रोध—जलाशय के सूखते हुए कीचड़ की भूमि में पड़ी दरार के समान जो आगामी वर्षा ऋतु में मिटती है।

(इ) प्रत्याख्यानी क्रोध—रेत में रेखा के समान जो जल्दी मिट जाती है।

(ई) संज्वलन क्रोध:- पानी में खिंची रेखा के समान जो खींचने के साथ ही मिट जाती है ।

कषाय का दुष्परिणाम ससार के जीव आज तक भोगते चले आ रहे हैं । कषाय ने ही प्रेम, प्यार और प्रतीति का नाश किया है ।

राग-द्वेष ही विष-वृक्ष है । वासना और कषाय से राग द्वेष को जन्म मिलता है । माया व लोभ से आसक्ति तथा आसक्ति से राग का प्रादुर्भाव होता है । क्रोध व मान से घृणा की उत्पत्ति हुई है और घृणा से द्वेष पैदा होता है । घृणा व आसक्ति ने ही वैर व ममता को आश्रय दिया है । समस्त ससार वासना और कषाय की अग्नि में जल रहा है ।

भगवान् महावीर ने अपने सुन्दर प्रवचन में कहा है—

“शान्ति से क्रोध को, मृदुता से मान को, सरलता से माया को और सतोष से लोभ को जीतना चाहिए ।”

## भगवान् महावीर का कर्मवाद

[शुभ करो, शुभ होगा  
अशुभ करो, अशुभ होगा]

[और शुद्ध आत्मतत्त्व में लीन होंगे तो शुद्ध होगा जो कर्मक्षय का कारण है ।]

पुद्गल द्रव्य की अनेक जातियाँ हैं । उनमें एक 'कर्मण वर्गणा' भी है । यही कर्म-द्रव्य है । कर्म-द्रव्य सम्पूर्ण लोक में सूक्ष्म रज के रूप में व्याप्त है । वही कर्म-द्रव्य मन, वचन और काय के योग (मिलान) द्वारा आकृष्ट होकर जीवात्मा के साथ बद्ध हो जाते हैं और 'कर्म' कहलाने लगते हैं ।

कर्म विजातीय द्रव्य होने के कारण आत्मा में विकृति उत्पन्न करते हैं और उसे पराधीन बनाते हैं ।

जीवात्मा पर-पदार्थों का उपभोग करता हुआ राग-द्वेष के कारण किसी कर्म को सुखरूप और किसी को दुःख रूप मानता है । सुख दुःख की अनुभूति तो तत्काल ही समाप्त हो जाती है किन्तु बच रहे संस्कार समय आने पर अपना प्रभाव दिखलाते हैं ।

संसार के समस्त प्राणियों के पीछे राग द्वेष की वृत्ति काम करती है । वही प्रवृत्ति अपना एक संस्कार छोड़ जाती है । उस संस्कार से पुनः प्रवृत्ति होती है और प्रवृत्ति से पुनः संस्कार का निर्माण होता



है। इस प्रकार बीज और वृक्ष की तरह यह सिलसिला सनातन काल से चला आ रहा है।

जीव कर्म करने में स्वतंत्र है। प्रश्न उठता है कि फल देने की शक्ति किसमें निहित है ?

कोई मनुष्य शराब पीता है। नशा उत्पन्न करने के लिए शराब को किसी की सहायता नहीं चाहिए। दुग्ध-पान से शरीर में शक्ति आती ही है। भोजन करने से भूख मिटती ही है और जलपान से प्यास बुझती ही है। स्पष्ट है, इन पदार्थों को अपना फल देने के लिए किसी अन्य सहारे की तलाश नहीं करनी पड़ती। कर्म भी जड़ पदार्थ है। उनमें भी स्वयं अपना फल प्रदान करने की शक्ति विद्यमान है।

कर्म बध का प्रधान कारण मन और उसके सहायक वचन तथा काय (शरीर) एव कषाय है जिनका जिक्र पहले किया जा चुका है।

आत्मा को स्वच्छ दीवार, कषायों को गोद और मन-वचन काय के योग को वायु मान लिया जाये तो कर्म बध की व्यवस्था सहज ही समझ में आ जायेगी। आत्मा रूपी दीवार पर जब कषायों का गोद लगा रहता है तो योग की आंधी से उड़कर आई हुई कर्म-रूपी धूल चिपक जाती है। वही 'चिपक' जितनी सबल या निर्बल होगी, 'बध' उतना ही प्रगाढ़ या शिथिल होगा और धूल श्वेत या काली जैसी भी होगी वैसी ही चिपकेगी। हाँ, कषाय का गोंद यदि हट जाये और दीवार सूखी रह जाये तो धूल का आना जाना तो नहीं सकेगा, किंचिपकना बंद हो जायेगा। कर्म परमाणुओं का आना मन-वचन-काय की शक्ति अशक्ति पर निर्भर है। किन्तु बधन की तीव्रता-मंदता या चिपकना कषायों की कमी-बेशी पर निर्भर है।

वास्तव में जन्म-मरण का मुख्य कारण कषाय है। कषाय के अभाव में मन-बचन-काय के योग लंगड़े हो जाते हैं। कषायों का अन्त होते ही आत्मा को पूर्णत्व प्राप्त हो जाता है और 'घातिक कर्मों' का विध्वंस हो जाता है।

'घातिक' और 'अघातिक' शब्दों से कर्मों की आक्रमण शक्ति (बर्बरता और मदता) को सूचित किया गया है। जीव की अनन्त दर्शनज्ञान-आदि शक्तियों का घात (ह्रास) करने वाले कर्म 'घातिक' कहलाते हैं। परन्तु जो कर्म जीव के गुण विकास में बाधक नहीं होते अथवा व्याघात नहीं पहुँचाते वे अघातिया कर्म कहलाते हैं। स्वभाव के आधार पर 'कर्म' के आठ विभाग किये जाते हैं :—

- |              |              |
|--------------|--------------|
| १. ज्ञानावरण | २. दर्शनावरण |
| ३. वेदनीय    | ४. मोहनीय    |
| ५. आयुष्य    | ६. नाम       |
| ७. गोत्र     | ८. अन्तराय   |

—ज्ञानावरण के हटने से आत्मा में अनन्त ज्ञान शक्ति प्रकट होती है।

—दर्शनावरण के हटने से अनन्त दर्शन शक्ति जाग्रत होती है।

—वेदनीय का क्षय 'अनन्त सुख' प्रकट करता है।

—मोहनीय कर्म की जकड़ प्रबलतम होती है। इसके क्षय होने से 'परिपूर्ण सम्यक्त्व और चारित्र्य' का प्रादुर्भाव होता है।

—आयुष्कर्म के क्षय से 'अजर-अमरता की अनन्तकालीन स्थिति' (सिद्धगति) प्राप्त होती है।

—नाम कर्म के क्षय से 'अमूर्तत्व गुण' प्रकट होता है जिसे भुक्तात्मा एक ही जगह अवगाहन कर सकते हैं।

—गोत्र कर्म के क्षय से अगुरुलघुत्व गुण प्राप्त होता है।

—अन्तराय के क्षय से अनन्त शक्ति (बलवीर्य) व विपुल लाभ प्राप्त होता है।

## भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित “द्विविध धर्म”

धम्मं दुविहे पणुत्ते,  
तजहा-अगार धम्मं चेव,  
अणुगार धम्मं चेव” (ठाणांग सूत्रागम)

१. अगार धर्म :—

गृहस्थ में रहते हुए, तथा पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय अथवा अन्तराष्ट्रीय उत्तरदायित्वों को निभाते हुए मुक्ति मार्ग की साधना करना अगार धर्म है। इसे श्रावक धर्म भी कहते हैं।

अनगार धर्म :—

जो विशिष्ट साधक गृह त्यागकर साधु जीवन अंगीकार करते हैं, पूर्ण अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह की आराधना करते हैं उनका आचार अणुगार (अनगार) धर्म कहलाता है।

—साधु उपर्युक्त ‘व्रतों को पूर्ण रूप से पालन करता है।

—श्रावक (गृहस्थ) उन व्रतों को आंशिक रूप में पालन करता है।

व्रत क्या है ?

जीवन को सुधड़ बनाने वाली, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाली मर्यादाएँ नियम कहलाती हैं। जो मर्यादाएँ सार्वभौम हैं, प्राणिमात्र के लिए हितकारी हैं और अपने लिए भी शुभ हैं उन्हें ‘नियम या व्रत’ कहा जाता है। जीवन में अशुभ में आने वाले दोषों

को त्यागने का जब दृढ़ संकल्प उत्पन्न होता है, तभी व्रत की उत्पत्ति होती है ।

नदी के दो किनारे उसके जलप्रवाह को नियंत्रित रखते हैं, थामे रखते हैं और उसे छिन्न-भिन्न होने से रोकते हैं । इसी प्रकार जीवन शक्ति को केन्द्रित करने और योग्य दिशा में ही उसका उपभोग करने के लिये 'व्रतों की परमावश्यकता है ।

ढोरी टूट जाने पर पतंग की क्या हालत होती है ? उसे धूल में मिलना पड़ता है । ऐसे ही जीवन रूपी पतंग को उन्नत रखने के लिए मनुष्य को व्रतों की 'ढोरी' के साथ बंधे रहने की आवश्यकता है ।

**मूलभूत दोष :—**

पवित्रता की ओर अग्रसर होने के लिये सांसारिक पाप-दोषों को जानना और उनसे बचने की तरकीब करना व्रतधारी गृहस्थ अथवा साधु के लिये जरूरी है । संसार में प्राणियों के दोषों की गणना करना संभव नहीं । कुछ मूलभूत दोष ऐसे हैं जिनसे अनेक अन्य दोष उत्पन्न होते हैं । उन्हें दूर करने का व्रत गृहस्थ व साधु को लेना है :—

—हिंसा, असत्य, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह

उपर्युक्त पांच दोषों के कारण ही मानवता संतुलित और दुःखी हो रही है और कुचली जा रही है । इन्हीं के दुष्प्रभाव से मनुष्य मनुष्य नहीं रहता बल्कि दानव, राक्षस, चोर, लुटेरा, अनाचारी, लोभी, स्वार्थी, प्रपची, मिथ्याभावी आदि बन जाता है । यही दोष हैं जो आत्मा को निज-स्वरूप प्राप्त करने में बाधक होते हैं । ये आत्मा के वास्तविक शत्रु हैं ।

जब मनुष्य इन दोषों पर विजय प्राप्त कर लेता है तो उसे महात्मा बनने में अधिक बिलम्ब नहीं लगता ।

### हिंसा :—

यह सबसे बड़ा दोष है । यह समस्त पापों का जनक है । मनुष्य की सभ्यता के इतिहास का सबसे बड़ा माप-दण्ड यह है कि युग-युगान्तर से उसने 'हिंसक' से अहिंसक बनने में कितनी मजिले तय की है ।

हिंसा 'प्रमाद' में और अहिंसा 'विवेक' में निहित है । मनोभावना ही हिंसा-अहिंसा की निर्णायक कसौटी है । भाव हिंसा की मौजूदगी में होने वाली द्रव्यहिंसा (प्राणहिंसा) ही हिंसा कहलाती है । डाक्टर के द्वारा सावधान रहते हुए भी, यदि किसी प्राणी की हिंसा हो जाये तो वह हिंसा नहीं है । डाक्टर को उस हिंसा का दोष नहीं लगेगा क्योंकि डाक्टर की मनोभावना हिंसा करने की नहीं थी ।

### असत्य :—

इसका अर्थ है अयथार्थ, अप्रशस्त । जो वस्तु जैसी है वैसी न कहकर अन्यथा कहना 'अयथार्थ असत्य' है । दूसरे को पीड़ा पहुँचाने के लिये दुर्भावना से निर्धन व्यक्ति को 'कगाल' कहना, चक्षुहीन को चिढ़ाने के लिये 'अघा' कहना, दुर्बल को दुःखी करने के लिए 'मरियल' कहना अथवा हिंसाजनक व हिंसोत्तेजक भाषा का प्रयोग करना यह सब असत्य में शामिल है, भले ही वह यथार्थ ही क्यों न हो ।

### अदत्तादाद चोरी :—

बिना पूछे किसी वस्तु को ग्रहण करना या स्वामी की अनुमति के बिना उसपर अधिकार करना, मार्ग में गिरी पड़ी या किसी की भूली हुई वस्तु को हड़प जाना या उस पर अधिकार कर लेना अदत्ता-

दान कहलाता है। लालच पर जब कोई अंकुश नहीं रहता तभी चोरी की भावना पनपती है।

### मैथुन

काम-वासना के वशीभूत होकर स्त्री और पुरुष जब पारस्परिक सम्बन्ध की लालसा करते हैं तो वह क्रिया मैथुन कहलाती है। मैथुन को “अब्रह्म” कहकर पुकारा गया है। यह पाप आत्मा के सद्गुणों का नाश करता है, शरीर को रोगी और निःसत्त्व बनाता है, समाज की नैतिक मर्यादाओं का उल्लंघन करता है और उन्नति में बाधक है।

### परिग्रह

किसी भी पर-पदार्थ को ममत्व भाव से ग्रहण करना परिग्रह कहलाता है। ममत्व-मूर्छा (लोलुपता) ही वास्तव में परिग्रह है। भौतिक पदार्थों पर आसक्ति रखने से विवेक नष्ट हो जाता है। राग-द्वेष के वशीभूत होकर आत्मा अपने लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाता है।

ये पाँच महान् दोष हैं जो ससार के सब दोषों के मूल कारण हैं। व्यक्ति, समाज व राष्ट्र की शान्ति इन्हीं से भंग होती देखी जाती है। इनका सार समझना आवश्यक है।

जब इन दोषों को दूर किया जाता है तो यही गृहस्थ के पाँच अंगुव्रत तथा मुनि के लिये पाँच महाव्रत बन जाते हैं। गृहस्थ इन्हे आशिक रूप में और साधु पूर्णरूपेण पालन करता है। इनके नाम ये हैं :—

- |               |             |           |
|---------------|-------------|-----------|
| १. अहिंसा     | २. सत्य     | ३. अस्तेय |
| ४. ब्रह्मचर्य | ५. अपरिग्रह |           |

गृहस्थ के लिये उपर्युक्त पाँच अंगुव्रतों की पोषणा करने के लिये तीज ‘गुणव्रत’ और चार ‘शिक्षाव्रत’ बनाये गये हैं।

### तीन गुणव्रत

१. दिग्व्रत :—इस व्रत का धारण करने वाला समस्त दिशाओं में गमनागमन की मर्यादा करता है और उससे बाहर सब प्रकार की क्रियाओं का त्याग करता है ।

२. उपभोग परिभोग परिमाण :—एक बार भोगने योग्य वस्तु को 'उपभोग' कहते हैं, जैसे आहार आदि । बारम्बार भोगने योग्य वस्तु को 'परिभोग' कहते हैं—जैसे वस्त्र आदि । उपभोग परिभोग वस्तुओं की मर्यादा बाँध लेने से पाप पूर्ण व्यापारों का त्याग हो जाता है ।

३. अनर्थदण्ड त्याग :—बिना प्रयोजन हिंसा करना अनर्थदण्ड कहलाता है । यह व्रत कामोत्तेजक कुचेष्टा और वात्सलाप, असभ्य वचन तथा हिसाजनक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण करता है ।

### चार शिक्षाव्रत

१. सामायिक व्रत—सब पदार्थों में तटस्थभाव अथवा 'समभाव' स्थापित करना इस व्रत का उद्देश्य है । पापमय व्यापारों का त्याग करके निश्चित समय के लिये आत्मचिंतन करने का दैनिक अभ्यास करना ही इस व्रत में अभीष्ट है ।

२. देशावकाशिक व्रत—एक दिन या न्यूनधिक समय के लिये दिशाओं का परिमाण करना और उस परिमाण के बाहर समस्त पाप कार्यों का त्याग करना देशावकाशिक व्रत कहलाता है ।

३. पौषधव्रत—जिससे आत्मिक गुणों या धर्म भावना का पोषण होता है, वह पौषधव्रत कहलाता है । एक रात-दिन उपवास करना,

अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना, ध्यान, स्वाध्याय व आत्म-स्मरण करना और सर्व प्रकार की सासारिक उपाधियों से छुट्टी पाकर साधु-सरीखी चर्या धारण करना इस व्रत का उद्देश्य है।

4. अतिथि संविभाग—जिनके आने का समय नियत नहीं उन्हें अतिथि कहते हैं। साधु बिना सूचना दिये आते हैं। उन्हें समयोपयोगी आहार पानी का दान करना अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है। संग्रह वृत्ति को कम करने तथा त्याग भावना को विकसित करने के लिये इस व्रत की व्यवस्था की गई है। साधु के अतिरिक्त अन्य दीन-दुःखी व्यक्ति भी द्वार से निराशन लौटते।

उपरोक्त बारह व्रतों (५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत) का पालन करने से आध्यात्मिक उन्नति, सामाजिक न्याय तथा स्व-पर सुख की प्राप्ति होती है। इससे बन्धुत्व और शान्तिमय वातावरण उपजता है और संसार स्वर्गमय बन जाता है। ये व्रत हिसारहित स्वस्थ “समाजवाद” और “साम्यवाद” का दिग्दर्शन कराते हैं।

महावीर की देन संसार के लिये कितनी उपयोगी और शान्ति-दायक है।



मनुष्य मात्र ने जीवित रहने, अच्छी तरह से जीवित रहने, सुख-सम्मान से जीवित रहने के लिये बड़ी बड़ी विद्याएँ और कलाएँ रच डालीं। पुरुषों के लिये ७२ कलाओं का और स्त्रियों के लिए ६४ कलाओं का विधान किया गया। मनुष्य दीर्घायु होकर १०० वर्ष तक जिये, इस सम्बन्ध में प्राचीन धर्मग्रन्थों तथा शास्त्रों में विवेचन किया गया है।

घर में नव-जात शिशु के आगमन पर खुशी के नगाड़े बज उठते हैं, परन्तु इसके विपरीत, मृत्यु होने पर रोना, पीटना, हाय हाय करना जैसे शब्द सुनाई पड़ते हैं। मृत्यु का समाचार पाकर अपने-पराये सभी शोकातुर हो जाते हैं। कितना भयावह परिवर्तन है। कितना अंतर है 'जीवन' और 'मृत्यु' में।

क्या वस्तुतः मृत्यु ऐसी भयावह और निकृष्ट है? कोई भी मरना नहीं चाहता, सभी जीना चाहते हैं। जो व्यक्ति काल का ग्रास हो गया, वह कभी लौट कर नहीं आता।

प्रत्येक वस्तु के दो पहलू होते हैं—उज्ज्वल और अन्धकारमय अथवा आपत्तिग्रस्त।

भगवान् महावीर ने मृत्यु को बुरा नहीं कहा। मृत्यु से भयभीत होना अज्ञान का फल है। मृत्यु कोई विकराल दैत्य नहीं है। मृत्यु मनुष्य का मित्र है। मृत्यु एक मंजिल है किसी लम्बे संकट की। लम्बी साधना के पश्चात् मृत्यु एक विश्राम है और उसके पश्चात् फिर एक नया उल्लासमय जीवन आरम्भ होता है। यदि मृत्यु सहा-

यक न बने तो मनुष्य की उन्नति के मार्ग वन्द हो जायें—साधना, स्वर्ग और मोक्ष कल्पना की बातें बनकर रह जायें ।

कारागार में एक व्यक्ति कैद है । तग कोठड़ी में सर्प और बिच्छु डाँस और मच्छर के हर समय काटने का भय है । काल-कोठड़ी की गर्मी से वह बेहाल हो रहा है । यदि कोई उसे इस भयकर कारागार से छुड़ा दे तो उसका कितना उपकार मानेगा वह कैदी !

इस शरीर के कारागार से छुड़ा देने वाली मृत्यु को क्यो न उपकारी माना जाये । इस जर्जर और रोगों से व्याप्त देह-रूपी पिजरे से निकालकर दिव्य देह प्रदान करने वाला मृत्यु से अधिक उपकारक और कौन होगा ?

वस्तुतः मृत्यु कोई कष्टप्रद वस्तु नहीं वरन् टूटी फूटी भोपड़ी को छोड़कर 'नवीन भवन' में निवास करने के समान एक आनन्दप्रद कार्य है । किन्तु अज्ञानता के कारण पैदा हुआ वस्तुओं में ममत्वभाव इस नफे के व्यापार को घाटे का सौदा बना देता है । अज्ञानी जीव अपने परिवार और भोग साधनों के विछोह की कल्पना करके मृत्यु के समय हाय-हाय करता है, तडपता है, छटपटाता है और आकुल व्याकुल हो जाता है । परन्तु मर्मज्ञ तत्त्वदर्शी पुरुष अनासक्त होने के कारण मध्यस्थभाव में स्थिर रहता है और जीवन भर के साधना के मंदिर पर स्वर्णकलश चढ़ा लेता है । वह परम शांत एवं निराकुल भाव से अपनी जीवन यात्रा पूरी करता है और इस प्रकार अपने वर्तमान को ही नहीं, वरन् भविष्य को भी मंगलरूप बना देता है ।

संयमी और कर्नव्यशील जीवन ही सर्वोत्कृष्ट जीवन है । जब तक जीओ विवेक और आनन्द से जीओ, ध्यान और समाधि की तन्मयता से जीओ, अहिंसा और सत्य के प्रसार के लिये जीओ । और जब मृत्यु आवे तो आत्मसाधना की पूर्णता के लिये, पुनर्जन्म में अपने आध्या-

त्मिक लक्ष्य सिद्धि के लिये अथवा मोक्ष के लिए मृत्यु का भी समाधि पूर्वक वरण करो ।

भगवान् महावीर ने “मृत्यु विज्ञान” के विशद विवेचन में मृत्यु के १७ प्रकार बताये हैं । इनमें इंद्रियाधीन, कषायाधीन, शोकाधीन, मोहाधीन होकर मृत्यु को प्राप्त होना ऐसा है जैसा किसी गूढ़, बाज आदि ने किसी निरीह पक्षी-शावक को नोच दबोच लिया हो और उसे अपना आस बना लिया हो । अन्त में ‘समाधि-मरण’ को उत्कृष्ट बतलाया गया है ।

प्राणांतकारी सकट, दुर्भिक्ष, बुढ़ापा अथवा असाध्य रोग होने पर जब जीवन का रहना सम्भव प्रतीत न हो तो उस समय समाधिमरण अंगीकार किया जाता है । इसे “मृत्यु-महोत्सव” की भावपूर्ण संज्ञा दी गई है ।

समाधिमरण अंगीकार करने वाला महासाधक सब प्रकार की मोह ममता को दूर करके शुद्ध आत्मस्वरूप के चित्तन में लीन होकर समय गुजारता है । उसे नीचे लिखे दोषों से बचने के लिये सतर्क रहना होगा ।

१. इस ससार के सुखों की कामना करना ।

२. परलोक के सुखों की इच्छा करना ।

३. समाधिमरण के समय पूजा प्रतिष्ठा देख अधिक जीने की इच्छा करना ।

४. भूख, प्यास, रोगजनित व्याधि से कातर होकर जल्दी मरने की इच्छा करना ।

५. इन्द्रियों के भोगों की आकांक्षा करना ।

सांसारिक भोगोपभोगों को त्यागकर आत्म-भाव में रमण करने वाले वीर पुरुष मृत्यु से भयभीत नहीं होते वरन् उसे अपना मित्र समझते हैं । इस महान् कला को याद रखने और इस पर आचरण करने में ही हमारा हित है ।

भगवान् महावीर ने 'मानवता के मुख को उज्ज्वल करने के लिये भारतीय समाज को "अहिंसा" का जो कवच प्रदान किया उसका विशेष सद्प्रभाव पड़ा। उनके "अहिंसा-आन्दोलन" की विहार-भूमि अधिकतर मगध एव उसके आसपास का क्षेत्र रही। उन्होंने एक ऐसा निःस्वार्थ सैनिक-दल तैयार किया जिसकी 'धर्म-घोषणा' का प्रभाव मगध (बंगाल, बिहार), उड़ीसा, उत्तरी भारत, मध्य प्रदेश, पश्चिमी भारत, दक्षिण तथा सुदूर दक्षिणी प्रांतों पर विशेष रूप से पड़ा। इसके फलस्वरूप समय समय पर, कई शताब्दियों तक, अहिंसक मुनियो या साधुओं ऐसे 'कर्मठ नेता' (आचार्य), मैदान में आते रहे जिन्होंने 'अहिंसा, को समाज में प्रतिष्ठित करने के लिये जी-जान से कार्य किया।

इन आचार्यों की प्रकाण्ड विद्वत्ता, उच्च आदर्श, तप-त्यागमय जीवन तथा ओजस्विनी वाणी का प्रभाव 'राजा से लेकर रंक तक पड़ा। जन-जन के आचार विचार में एक सद्क्रांति आई। फलतः कर्तव्यशीलता, प्रेम, सहिष्णुता और समानता की भावनाओं को संपुष्टि मिली। समय समय पर धर्म-वाचनाएँ (धर्म सभाएँ) करके कुछेक आचार्यों ने भगवान् महावीर की दिव्य-वाणी को संकलित किया जिसने 'आगम' का रूप धारण किया। आचार्य भद्रबाहु स्वामी तक बिना किसी मत भेद के, अबाध गति से, 'वीर वाणी' का प्रसार हुआ।

जैन परम्परा में ५०० से अधिक विशिष्ट साहित्यकार ऋषि पुंगव प्रतिभा संपन्न आचार्य रत्न हुए जिन्होंने संस्कृत, प्राकृत, मागधी, शौरसेनी, अपभ्रंश, तामिल, कर्नाटक आदि भाषाओं में १५००० के लगभग ग्रंथ लिखे जिनमें आत्मिक उत्थान और लोक कल्याण की भावना पद पद पर दृष्टिगोचर होती है ।

दर्शन, सिद्धान्त, काव्य, नाटक, पुराण, चरित्र, उपन्यास, कहानी चम्पू, स्तुति, भक्ति, मंत्र, तत्र, ज्योतिष, जीव विज्ञान, वैद्यक, चरित्र निर्माण, मूर्ति विज्ञान, भवन निर्माण, चित्र, रत्न परीक्षा, इतिहास, अष्टांग योग, नीति, मुनिधर्म, श्रावकधर्म, कविता, कला राजधर्म, पशुजगत, गणित और मानव जीवन को सुखी बनाने और जगत में सम्मानपूर्वक जीने की कला आदि विषयों पर भारत की प्रत्येक भाषा में साहित्य का निर्माण किया ।

इसके पश्चात् गृहस्थ विद्वानों भट्टारको, यतियों और उनके पंडितों ने प्रान्तीय भाषाओं में हिन्दी, मराठी, गुजराती, बगला, उर्दू और विदेशी भाषा अंग्रेजी और फ्रेच भाषा में जैन ग्रन्थों की रचना की । जिनमें अधिकांश अनुवाद और अधिक संख्या में मौलिक ग्रन्थों की रचना हुई जिनके द्वारा जन साधारण का महान् उपकार हुआ ।

म० महावीर के प्रथम गणधर गौतम स्वामी हुए । गौतम स्वामी, सुधर्म स्वामी और जम्बू स्वामी तीनों केवली हो निर्वाण को प्राप्त हुए ।

प्रमुख आचार्यों के नाम

- १ गणधर सुधर्मा स्वामी
- २ आचार्य जम्बू स्वामी
- ३ आचार्य प्रभव स्वामी
- ४ आचार्य विष्णु कुमार

- ५ आचार्य शय्यभव सूरि
- ६ आचार्य नंदमित्र
- ७ आचार्य यशोभद्र सूरि
- ८ अस्कार्य अपराजित
- ९ आचार्य संभूति विजय
- १० आचार्य गोवर्धन
- ११ आचार्य भद्रबाहु स्वामी

### आचार्य भद्रबाहु

[द्रविड एकता के प्रतीक]

मगवान् महावीर के निर्वाण के ५६ वर्ष पश्चात् आचार्य भद्रबाहु को जितना अधिक सम्मान, पदवी तथा श्रद्धांजलि उपस्थित करें तुच्छ प्रतीत होता है। आपने अपने योग-बल से मगध की जनता और सम्राट् चंद्रगुप्त को भविष्य में होने वाले द्वादश वर्षीय दुर्मिक्ष का सकेत किया। उन्हीं के उपदेशों का परिणाम था कि सम्राट् चंद्रगुप्त उनके साथ दक्षिण यात्रा में गया और शिष्यत्व स्वीकार करते हुए, उनकी शिक्षाओं को शिरोधार्य करते हुए अपने जीवन का कल्याण किया। यह तथ्य 'श्रवणबेलगोल' की चंद्रगुफा के लेख से सिद्ध होता है।

आचार्य भद्रबाहु के साथ १२०० मुनियों का संघ दक्षिण पथ को गया था। वे सारे दक्षिण में फैल गये। उन्होंने वहाँ अहिंसा सिद्धान्त का खुलकर प्रचार किया। 'कलभ्र' 'होयसल' 'गग' आदि राजवंशों के नरेशों तथा जनता ने आचार्य भद्रबाहु के मुनियों का भव्य स्वागत किया, उनकी शिक्षाओं पर आचरण किया, जिनमंदिर बनवाये तथा व्यवस्था व व्यय के लिये ग्राम-दान दिये।

अतः महान् श्रुतधर आचार्य भद्रबाहु आर्यों और द्रविड़ों की एकता का कारण बने। अथवा यू कहिये कि उत्तरी भारत की विचार

बारा में और दक्षिणी भारत की विचारधारा में सामंजस्य कायम करते हुए कि “भारत एक राष्ट्र है” इसकी एकता की नींव में एक “सशक्त शिलान्यास” रख गये ।

आचार्य स्थूल भद्र

आचार्य महागिरि

आचार्य सुहस्ति

आचार्य गुण सुन्दर आदि अनेक

आचार्यों ने जनता में जैन धर्म की विशेष छाप लगाई । आर्य सुहस्ति के शिष्य गुणसुंदर ने महाराज अशोक के पुत्र सम्राट सम्प्रति की सहायता से भारत के विभिन्न प्रांतों के अतिरिक्त अफगानिस्तान, यूनान और ईरान आदि एशिया के राष्ट्रों में भी जैन धर्म (अहिंसा धर्म) का प्रचार किया ।

सूत्रयुग के प्रतिष्ठापक ‘उमास्वाति’ व जैन तर्कशास्त्र के व्यवस्थापक तथा प्रतिष्ठापक ‘समत भद्र’ और सिद्धसेन दिवाकर’ के नाम उल्लेखनीय हैं । इन सब से पूर्व आचार्य ‘कुन्दकुन्द’ ने आध्यात्मिक ग्रंथों की रचना करके समाज और साहित्य की अश्चर्यजनक सेवा की ।

अनेक आचार्यों और मुनियों ने भगवान् महावीर की शिक्षाओं से प्रेरित होकर देश के कोने कोने में अहिंसा धर्म का प्रचार किया, साहित्य का निर्माण किया और अध-श्रद्धा में ग्रसित जन समूह को सन्मार्ग दिखाया ।

गुजरात नरेश ‘कुमारपाल’ की अहिंसा की दीक्षा, दक्षिण में ‘विजयनगर’ की राज्यव्यवस्था में अहिंसा की प्रतिष्ठा तथा बिहार और मथुरा प्रदेशों में अहिंसक वातावरण उत्पन्न करने में भी इन आचार्यों का सक्रिय योगदान रहा है ।

जैनाचार्यों ने, जैन मुनियों ने अहिंसा, तप व त्याग की कसौटी पर जो उच्चादर्श समाज के सामने रखा है वह आज भी भारत के लिये गौरव की बात है ।

सौराष्ट्र में 'अहिंसक भावना' को जो उल्लेखनीय प्रश्रय मिला है, 'वह जैनाचार्यों की ही देन है । उसका सुन्दर परिणाम अनेक रूपों में हमारे सामने आया है । स्वामी दयानंद ने वेदों का जो 'अहिंसा-परक' अर्थ किया और महात्मा गांधी ने जो 'अहिंसा नीति' अपनाई, उसके पीछे सौराष्ट्र का शताब्दियों का अहिंसामय वातावरण ही कारण है । गांधी जी को तो बेचर स्वामी ने विलायत जाने से पूर्व "मद्य, मांस और परस्त्रीगमन" का त्याग करवाया था । कवि 'रायचंद्र जैन' के प्रति उन्होंने अपना आदर भाव प्रकट किया है । "मेरे जीवन पर जिन व्यक्तियों की छाप है उनमें रायचंद्र भाई मुख्य हैं" । और इसीलिये उनके सम्बन्ध में उनकी लेखनी से आभारपूर्वक उद्गार व्यक्त हुए हैं ।

इस अणुयुग में जैनाचार्यों द्वारा प्ररूपित महावीर की अहिंसा ही शान्ति ला सकती है । परन्तु कई राष्ट्र अपनी हिंसवृत्ति को छुपाने के लिये 'अहिंसा का लबादा' ओढ़ते हैं । यह खतरनाक है । अहिंसा हृदयों से फूटनी चाहिये और कार्यरूप में प्रकट होनी चाहिये ।

विश्व सभ्यता के विकास की कहानी यही है—कि "किस दज्ज उसने अहिंसा को अपनाया ।"



भगवान् ऋषभ देव से लेकर भगवान् महावीर तक चौबीस तीर्थ-करों का जन्म राजवंशों में हुआ। प्रत्येक तीर्थकर के काल में अनेकानेक जैन राजे भी हुए, जिन्होंने जैनेद्रीय दीक्षा धारण की परन्तु आधुनिक इतिहास की पहुँच वही तक नहीं है। यहाँ केवल भगवान् महावीर के समय में हुए तथा पश्चाद्वर्ती कुछ राजाओं का वर्णन कर देना उपयुक्त प्रतीत होता है जिन्होंने अहिंसा-धर्म की प्रभावना में प्रशसनीय योगदान दिया।

### चेटक तथा अन्य राज-श्रेणी

राजा चेटक को भगवान् महावीर का प्रथम 'श्रमणोपासक' होने का श्रेय मिला। वह वैशाली के अति प्रभावशाली और वीर राजा थे। वह अट्टारह देशों के गणराज्य के अध्यक्ष थे। उनके 'अहिंसा-प्रेम' का पारावार यह था,—“मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपनी कन्याओं को उन राजाओं के साथ व्याहूँगा जो 'अहिंसक' विचारों के होंगे।”

सिंधु सौवीर के 'उदयन', अवंती के 'प्रद्योत', कौशाम्बी के 'शतानीक', चम्पा के 'दधिवाहन' और मगध के 'श्रेणिक' राजा चेटक के दामाद थे। इन में से राजा उदयन ने तो भगवान् महावीर के निकट जैनेश्वरी दीक्षा भी ग्रहण की थी।

मजे की बात यह है कि कट्टर अहिंसक प्रवृत्ति के होते हुए भी राजा चेटक ने “नीति की प्रतिष्ठा की” और शरणागत की रक्षा के लिये मगधराज कुणिक (कोणिक) के साथ भीषण सन्ग्राम किया।

उपयुक्त उदाहरण से उन लोगों को मालूम होना चाहिए जो अहिंसावादियों पर यह दोषारोपण करते हैं कि वे बुद्धिदिल और कायर होते हैं और युद्ध करने से घबराते हैं या कतराते हैं। युद्ध मुनि के लिए ता बर्जित हो सकता है परन्तु गृहस्थ के लिए कदापि नहीं। नीति की रक्षा के लिए एक सर्व हितकारो उद्देश्य की प्रतिष्ठा के लिए तथा कर्तव्य परायणता के रूप में युद्ध की अनिवार्यता का सच्चे अहिंसक ने कभी टाला नहीं।

ससार आभ्यन्तरिक शत्रुओं से पीड़ित है। जो योद्धा अंदर के दुर्जय शत्रुआ (काम, क्रोध, मान, माया, लोभ) पर विजय प्राप्त करने के लिए उद्यत है, मला वह बाहरी राजाओं से क्यों डरेगा, उनसे युद्ध करने से क्या घबराएगा ?

### मगधपति बिम्बसार और सम्राट् कुणिक

इतिहास प्रसिद्ध मगधपति बिम्बसार जैन साहित्य में 'श्रेणिक' के नाम से प्रसिद्ध है। राजा श्रेणिक का भगवान् महावीर के साथ वात्सलाप अत्यंत राचक तथा शिक्षाप्रद है। श्रेणिक के पुत्र सम्राट् कुणिक भा भगवान् महावीर के परम भक्त थे। कुणिक के पुत्र 'उदयन' ने भी जैन धर्म की ही शरण ली थी।

### काशी कौशल

काशी कौशल के अट्टारह लिच्छवी और मल्लि राजाओं ने भगवान् महावीर का निर्वाण महात्सव मनाया था। इससे प्रतीत होता है कि यह सब राजा जैन धर्म से प्रभावित थे।

### मौर्य सम्राट् और उनकी सेवाएँ

मौर्य शासको से पूर्व मगधदेश का "नद राजवंश" प्रधान था।

नंद वंश के राजाओं की सैन्यशक्ति व वैभव अतुलनीय थे। इन राजाओं में अधिकांश जैन धर्मानुयायी थे और उनमें सम्राट् नंद वर्द्धन मुख्य थे। उन्होंने लगभग समस्त उत्तरी भारत को जीत लिया था और कलिंग में अपनी विजय का नाद बजाया था। उनके पश्चात् नंदवंश का ह्रास आरम्भ होता है।

‘महानंद’ नाम के नंदवंशी नृप की जब मृत्यु हुई तो उसकी एक रानी शूद्रजाति से थी जिसका पुत्र बलवान् था परन्तु अन्य रानियों की संतानें अल्पायु थी। फलतः अपने पिता की आंख मिचते ही शूद्रजात नंद पुत्र “महापद्म” राज्य का स्वामी बन बैठा। शेष राजकुमारों को अपनी जान बचाने के लिये मगध को छोड़ना पड़ा। वे मजबूर होकर अन्य सुरक्षित स्थानों को चले गये।

इन्ही राजकुमारों में एक चंद्रगुप्त भी था। यह विवादास्पद प्रश्न है कि चंद्रगुप्त नंदराजा का पुत्र था या नहीं। परन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि उसका नंदवंश से घनिष्ठ सम्बन्ध था। हिन्दू पुराणों में चंद्रगुप्त का उल्लेख नंदेंद्रु” आदि विशेषणों द्वारा हुआ मिलता है। अतः ‘चंद्रगुप्त’ क्षत्रिय वंश का भूषण था और यही आगे चलकर मौर्य राज्य का संस्थापक हुआ।

कोई एक विद्वान् चंद्रगुप्त की मां को एक ‘नाइन’ बतलाने की गलती करते हैं। प्राचीन बौद्ध और जैन ग्रंथों में उनका क्षत्रिय होना प्रमाणित है। ‘मुद्राराक्षस’ नामक अर्वाचीन नाटक ग्रंथ में ही केवल उनका नाम “वृषल” नाम से हुआ है, किन्तु वृषल का अर्थ ‘नीच के अतिरिक्त ‘धर्मात्मा भी है जैसे:—

वृषं-सुकृतं लातीति वृषलः

इसीलिये चंद्रगुप्त को शूद्रजात बतलाना ठीक नहीं है।

जिस समय महापद्मनंद ने मगध सिंहासन को हथिया लिया था, उस समय चंद्रगुप्त बालक ही थे। उनकी माता मौर्यदेश के “मोरिय” क्षत्रियों की कन्या थी। वह अपने इस लाल को लेकर उसकी ननिहाल पहुंची। मोरिय क्षत्रियों ने सहर्ष उनका स्वागत किया और उनकी रक्षा का वचन लिया। एक क्षत्रिय की इससे अधिक खुशी क्या हो सकती है कि वह शरणागत को अभय प्रदान करे, तिस पर चंद्रगुप्त तो उन्हीं के खास अश थे।

महापद्मनंद ने देश पर आक्रमण कर दिया और अनेकयोद्धाओं को मौत के घाट उतार दिया। इस संकट काल में चंद्रगुप्त को अपनी माता से विदा होना पड़ा। वह पश्चिमी भारत की ओर तक्षशिला को चला गया। उस समय ३२६ ई० पू० सिकंदर महान् का भारत पर आक्रमण हो चुका था और सीमाप्रांत और पंजाब के कुछ हिस्से पर उसका अधिकार भी हो चुका था। चंद्रगुप्त ने यूनानी शिविर में रहकर उनकी राजनीति और सैन्य व्यवस्था का अवलोकन किया। सिकंदर से अनबन होने पर चंद्रगुप्त को वहां से खिसकना पड़ा। उसकी मदद एक ऐसे विलक्षण और उग्र स्वभावी व्यक्ति से हुई जो महापद्मनंद द्वारा किये गये अपमान का बदला लेने के लिये आतुर हो रहा था। यह चाणक्य नाम का ब्राह्मण था। वे परस्पर एक दूसरे के सहायक बन गये।

जैन ग्रंथों में चाणक्य को एक “चणक” नामी जैनी ब्राह्मण का पुत्र लिखा है जो अपने जीवन के अत काल में जैन मुनि हो गया था। इस सम्बन्ध में अधिक खोज की आवश्यकता है ताकि कुछ ऐसे तथ्य जिनपर अभी पर्दा पड़ा हुआ है, प्रकाश में लाये जाये।

चंद्रगुप्त के मन में मगधराज ‘महापद्मनंद’ को राजच्युत करने व बदला लेने की प्रबल इच्छा थी और उधर चाणक्य भी चंद्रगुप्त के

स्वप्नों को साकार करने के लिये कटिबद्ध हो गया था। प्रजा भी नद राजा से असन्तुष्ट थी और उसने हृदय से चद्रगुप्त का साथ दिया। परिस्थिति अनुकूल थी। चद्रगुप्त ने मगधराज पर धावा बोल दिया और चाणक्य की कुटिल राजनीति अत मे सफल हुई। चाणक्य को उसकी सफल 'कुटिल नीति' के आधार पर "कौटिल्य" भी कहते हैं। नद राजा 'महापद्म' की पराजय हुई और चद्रगुप्त को मगध का राज-सिंहासन मिल गया।

सिंहासनारूढ होने पर अपने परोपकारी चाणक्य को मन्त्रिपद दिया परन्तु चाणक्य ने बड़ी सावधानी से यहाँ भी अपनी राजनीति बरती। उसने 'प्रधान मन्त्री' का पद नदराजा के भूतपूर्व जैन धर्मानुयायी मन्त्री 'राक्षस' के सुपुर्द करने की सलाह दी। अतः राक्षस चंद्रगुप्त का प्रधानमन्त्री बना। इस प्रकार चाणक्य ने अपनी बुद्धिमत्ता से 'शत्रु' को भी चंद्रगुप्त का विश्वास-पात्र राजभक्त बना दिया।

चद्रगुप्त ने एक नया मुख्य कार्य किया। उसने अपने वंश का नाम पितृ वंश (नद वंश) के आधार पर नहीं रखा। एक तो नदवंश बहुत बदनाम हो गया था, दूसरे उसकी प्राणरक्षा करने और जीवन को समुन्नत बनाने का श्रेय उसके ननिहाल के 'मोरिय' क्षत्रियों को प्राप्त था जो चद्रगुप्त के कारण नंदराजा द्वारा तबाह कर दिये गये थे। मातृवंश 'मोरिय' अथवा 'मौर्य' के प्रति वह अत्यन्त कृतज्ञ था। उस समय मौर्य क्षत्रिय थे, तो मौर्य ब्राह्मण भी मिलते थे। इस प्रकार 'मौर्य' नाम उस देश की अपेक्षा प्रसिद्ध था, वह केवल जाति सम्बोधक नाम ही न रह गया था। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए चद्रगुप्त ने अपने वंश का नाम "मौर्य" रखने में गर्व अनुभव किया। यही "मौर्य" भारतवर्ष के लिये विशेष गौरव-वाचक शब्द बन गया।

चाणक्य की नीति का "सुदर्शनचक्र" इस सफलता से चला कि

दक्षिण को छोड़ चंद्रगुप्त शेष सारे भारत का सम्राट् बन गया । सिकंदर की मृत्यु के पश्चात् उसके मुख्य सेनापति 'सेल्यूकस निकेटर' ने अपने स्वामी के पदचिन्हों पर चलकर ससार विजेता बनने की कुचेष्टा की । उसने समझा कि मैं भारत को रौंद डालूंगा । वह भारी दल-बल लेकर भारत की सीमाओं पर आ उपस्थित हुआ ।

सम्राट् चंद्रगुप्त का बल 'चणक' पुत्र चणक्य था । युद्ध में भारतीय सैन्यसंचालन इतने ऊँचे दर्जे का किया गया कि सेल्यूकस के लिए हार मानने के सिवा और कोई चारा न रहा ।

भारतीय सभ्यता का सद्व्यवहार देखिये । सेल्यूकस को अपमानित नहीं किया गया । उसके साथ संधि की गई और केवल पंजाब, गांधार (अफ़गानिस्तान आदि) जो पहले से भारत के इलाके माने जाते थे, वापिस लिये गये । और किसी इलाके की अपेक्षा नहीं की गई ।

प्रतीत होता है कि सेल्यूकस भारतीय सभ्यता के उच्च विचारों से प्रभावित हुआ । उसने चंद्रगुप्त से पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अपनी पुत्री का विवाह उससे करके, उसे अपना जामाता बनाने की इच्छा प्रगट की । चंद्रगुप्त ने प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया । युद्ध और शत्रुता का वातावरण प्रेम और प्रणय-सूत्र में परिवर्तित हो गया । चंद्रगुप्त ने सेल्यूकस के सम्मानार्थ उसे ५०० हाथी भेंट किये । दौत्य सम्बन्ध भी स्थापित किये गये । यूनानी राजदूत 'मेगस्थनीज' मौर्य-दरबार में रहा । इस मैत्री सम्बन्ध से दोनों देशों को बहुत लाभ पहुंचा ।

चंद्रगुप्त की इस महान् विजय पर इतिहास की दृष्टि से अवलोकन किया जाना चाहिए । इसके पूर्व सिकंदर की भारत-विजय

(केवल भारत सीमा विजय) को इतिहासकार बड़ा महत्व देते हैं और कहते हैं—

“सिकन्दर की विजय “पश्चिम” की पूर्व” पर विजय है” ।

तो क्या चन्द्रगुप्त की सेल्यूकस पर विजय “पूर्व” की “पश्चिम” पर महान् विजय नहीं है ?

आज के भारत को चन्द्रगुप्त की इस विजय से एक बात सीखनी चाहिये कि केवल बाहुबल या अस्त्र-शस्त्र- बल से ही रण नहीं जीता जा सकता, बल्कि उसमें बुद्धि-कौशल भी चाहिये। युद्ध नीति धर्म-नीति से एक अलग चीज है। युद्ध-नीति को न समझने से भारत को शताब्दियों तक पददलित और तिरस्कृत होना पड़ा है।

उत्तरी भारत पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् चन्द्रगुप्त ने दक्षिण को भी अपने राज्याधिकार में किया ऐसा जैन इतिहास मानता है, आधुनिक इतिहासज्ञ भी तथ्य को अब स्वीकार करने लगे हैं।

उस जमाने में जबकि रेल, मोटर, हवाई जहाज जैसी तेज सवारी तथा तार व बेतार जैसे विद्युत गति से समाचार पहुँचाने वाले साधन सुलभ नहीं थे तो भी चाणक्य की सहायता से ऐसा सुदूर और अद्वितीय राज्यशासन कायम किया गया जो आगामी शासकों के लिये ‘पथप्रदर्शक’ बना। चाणक्य ने निम्न प्रकार से एक राजा का कर्तव्य निर्दिष्ट करके चन्द्रगुप्त को तदनुकूल दीर्घकाल तक राज भोग करने के योग्य बना दिया था :—

“जो राजा पढ़ लिखकर प्राणिमात्र के हित में तत्पर रहता है और प्रजा का शासन तथा शिक्षण करता है, वह चिरकाल तक पृथ्वी का उपभोग करता है” (कौटिल्यार्थ शास्त्र से उद्धृत)

चन्द्रगुप्त द्वारा शासन प्रबंध इतने अच्छे ढंग से किया गया कि जिससे लोगो में सुख-शान्ति, सच्चाई और धार्मिक भावों की उन्नति हुई। प्रजा इस को राम-राज तुल्य मानती रही।

मनुष्यों को ही नहीं प्रत्युत पशुओं को भी ज्यादा से ज्यादा सुख और कम से कम दुःख पहुँचाने का ध्यान रखा गया था। उस समय “पशु-धन का आदर किया जाता था। पशुओं को “मनुष्य का मित्र और सहायक” माना जाता था। पशु मनुष्य के जीवन को सुखी बनाते थे, अतः उन्हें दुःख पहुँचाना या उनका हनन करना वर्जित था। विशेष प्रकार के पशुओं के वध करने का अर्थ “मृत्यु दण्ड” था।

जैन धर्म से चन्द्रगुप्त का ससर्ग बाल्यकाल से ही रहा प्रतीत होता है। नद वंश की आस्था तो जैन धर्म में थी ही, उधर “मौर्याख्य देश” में भी भगवान् महावीर का उपदेश प्रभावकारी सिद्ध हुआ था। इस तरह चन्द्रगुप्त बचपन से ही जैन धर्म के स्वाधीन और सर्वसुखकारी आलोक में बड़े थे। श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु उनके धर्म गुरु थे। मेगस्थनीज ने भी लिखा है।

“चन्द्रगुप्त श्रमण गुरुओं की उपासना करता था और उनको आहार दान देता था।” जैन मुनियों की अहिंसामय शिक्षा का ही परिणाम था कि चन्द्रगुप्त का राज्य प्राणिहित के लिए “दयामय” था।

मगध में निरन्तर अनावृष्टि के कारण घोर दुर्मिक्ष के लक्षण प्रतीत होने लगे। श्रमणपति भद्रबाहु उस समय मुनि सघ के साथ दक्षिण की ओर जाने को तैयार हुए थे। चन्द्रगुप्त के राज्य का यह नियम था कि “जिस देश में फसल अच्छी हो, राजा उसमें अपनी प्रजा को लेकर चला जाये।”

मालूम होता है इसी नियम के अन्तर्गत ही चन्द्रगुप्त आचार्य



भद्रबाहु के साथ हो लिये और 'जैन मुनि' बनकर] आत्म कल्याण में लीन हो गए ।

प्राचीन जैन ग्रंथ "तिलोयपण्णति" में चन्द्रगुप्त को ही इस काल में अन्तिम मुकुटबद्ध राजा लिखा है जिमने जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की थी । वह श्रवणवेलगोल के स्थान पर ठहर गये थे । उन्होने यहां एक छोटी सी पहाड़ी पर एक गुफा में तपस्या की थी, जिसे "चन्द्रगुफा" के नाम से पुकारते हैं । चन्द्रगुप्त का समाधिकरण भी यही हुआ था ।

### विंदुसार

चन्द्रगुप्त मौर्य के पश्चात् साम्राज्य का उत्तराधिकारी उनका पुत्र विंदुसार बना जो "अमित्रघात" उपाधि से विख्यात हुआ । वह अपने पिता के समान वीर योद्धा था । जैन इतिहास में उसका नाम "वीर सेन" लिखा है, उसमें यह भी लिखा है कि विंदुसार अपने पुत्र "भास्कर" (अशोक) के साथ श्रवणवेलगोल की ओर भ्रमण करने के लिये गया था ।

### अशोक

विंदुसार के पश्चात् मगध साम्राज्य की बागडोर "अशोक वर्द्धन" के हाथों में आई । अपने पूर्वजों के समान अशोक भी अपने जीवन के आरम्भ काल में "जैन धर्मानुयायी" था और उसने अपने पितामह (चन्द्रगुप्त) के समाधि स्थान श्रवणवेलगोल में कई एक स्मारक बनवाये थे । अपने जीवन में उसने लोक-कल्याण के लिए "सर्वमान्य दिशाओं" का प्रचार किया परन्तु बौद्ध साधुओं से प्रभावित होकर उसने बुद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था ।

सारे जीवन में अशोक ने एक ही युद्ध किया और कलिंग विजय

के पश्चात् वह “अहिंसा धर्म” पर आचरण करने लगा था। Early Faith of Asoka नामक पुस्तक के अनुसार अशोक ने अहिंसाविषयक जो नियम प्रचारित किये, वे बौद्धों की अपेक्षा जैनो के साथ अधिक मेल खाते थे। “पशु पक्षियों को न मारने, वनों को निरर्थक न काटने और विशिष्ट तिथियों एवं पर्वों में जीवहिंसा बंद रखने आदि के आदेश जैन धर्म से मिलते हैं।”

### सम्प्रति

अशोक की मृत्यु के पश्चात् मौर्य साम्राज्य दो भागों में बंट गया। उत्तर पूर्वी भाग पर उसका पुत्र “दशरथ” अधिकार करके बैठ गया और पश्चिमीय भाग पर “सम्प्रति” का अधिकार हो गया। सम्प्रति ने अपने पिता के अनुसार यह अनुभव किया कि नरसंहार करके प्राप्त की गई विजय, सच्ची विजय नहीं है। सच्ची शान्ति अहिंसा के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है”।

अतः सम्प्रति ने प्रख्यात जैन मुनि “आर्य सुहस्ति” से जैन धर्म अंगीकार किया। सम्राट् सम्प्रति ने अनार्य देशों में जैन धर्म को उद्देश्य से जैन धर्मांधको के लिए धर्म स्थानों की व्यवस्था करवाई। अनार्य प्रजा के उत्थान के लिये सम्प्रति ने महत्वपूर्ण कार्य किया। उसने वहा धर्म-प्रचारक भेजकर जैन धर्म की शिक्षाएँ प्रसारित की।

अनेक विद्वानों का मत है कि आज जो शिला लेख अशोक के नाम से प्रसिद्ध है, सम्भव है उन अनार्य देशों में वे सम्राट् सम्प्रति के लिखवाये हुए हो।

[राज शक्ति का अहिंसा प्रचार में योगदान]

अब हम एक ऐसे भारतीय सम्राट् का उल्लेख करेंगे जिसने अपने बाहुबल से लगभग सारे भारत को जीता और अपने सुकृत्यों से शूरवीरता और धर्मवीरता की एक ऐसी यादगार छोड़ी जो जैन-धर्म के लिये अत्यंत गौरव की बात है।

प्राचीन काल में 'उड़ीसा' नामक भारती प्रात "कलिग देश" के नाम से सुप्रसिद्ध था। प्रागऐतिहासिक काल में भगवान् ऋषभदेव के एक पुत्र वहा के शासनाधिकारी थे। जिस समय भगवान् ऋषभदेव कलिग में धर्मोपदेश करने पहुंचे तो वहाँ के राजा राजपाट छोड़कर मुनि बन गये। तत्पश्चात् दीर्घ काल तक "कौशल" का राजवंश ही कलिग पर शासन करता रहा।

सम्राट् 'ऐल', खारवेल के पूर्वज, चेदि राष्ट्र तथा दक्षिण कौशल से आकर कलिग पर राज करने लगे। उनका 'ऐल' विरद उन्हें उत्तर कौशल के "ऐलेय" राजा से सम्बंधित करता है।

जब खारवेल ने सोलहवें वर्ष में कदम रखा तो अकस्मात् उनके पिता की मृत्यु हो गई। राज्य प्रथानुसार २५ वर्ष की आयु में उनका राज्याभिषेक हुआ। उन्होंने प्राचीन "तोसली" (टोसाली) को ही अपनी राजधानी बनाये रखा। सिंहासन पर बैठते ही उन्होंने अनेक प्रजाहितार्थ कार्य किये। पुरानी इमारतों का जीर्णोद्धार, सिंचाई के

लिये तालाबो तथा नहरो का बनवाना, नई इमारतों की तामीर आदि कुछ ऐसे सर्वप्रिय कार्य किये जिससे वह अपनी प्रजा के स्नेहमाजन बन गये ।

अब उन्होंने अपनी तलवार म्यान से निकाली और दिग्विजय के लिये अपनी राजधानी से प्रयाण किया । सर्वप्रथम उन्होंने पश्चिमीय भारत पर आक्रमण किया और “मुशिक” क्षत्रियों की राजधानी पर अधिकार कर लिया । बारह वर्षों तक प्रतिवर्ष वह अपने क्षात्र धर्म का पराक्रम प्रकट करते रहे । “राष्ट्रीय” और “भोजिक” क्षत्रियों को अधीन किया । दक्षिण भारत के “पाण्ड्य” राजाओं ने स्वयं ‘भेट’ भेजकर महाराज खारवेल से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किये । मौर्य-राज्य संहारक “पुष्यमित्र” पर भी आक्रमण किया और कुछ समय पश्चात् पुनः मगध पर आक्रमण करके पुष्यमित्र “बृहस्पतिमित्र” को अपने सम्मुख नतमस्तक होने पर बाध्य किया । मगध राज्य से विपुल धन-वैभव प्राप्त करने के पश्चात् “कलिग जिन” की अमूल्य मूर्ति जिसे पूर्व वर्ती नद वश के राजा विजय-पुरस्कार में मगध ले गये थे, खारवेल उसे वापिस कलिग ले आया । कलिग की प्रजा इस महान् विजय-पुरस्कार की पुनः वापिसी पर हर्षोल्लास में सम्राट् खारवेल की जय-जयकार करने लगी ।

खारवेल की बलशाली और विजयी सेनाओं के आगे “दिमेत्र” (विदेशी यूनानी राजा) न टिक सका । उसने मथुरा, पांचाल और साकेत पर अधिकार जमा रखा था । उसे बलात् पीछे हटना पड़ा । इस प्रकार खारवेल ने विदेशी जुए से भारत को आजाद कराया ।

प्रतिवर्ष अपनी विजयों के उपलक्ष्य में खारवेल अपनी राजधानी तोसलि में वापिस पहुँच कर विशिष्ट समारोह तथा धर्मोत्सव मनाता, निर्धनो तथा साधुओं को दान देता, जन-कल्याण के कार्य करता, भवन निर्माण कराता, नहरे खुदवाता और जिन मंदिर बनवाता था ।

खारवेल ने सारे भारत पर विजय प्राप्त की थी। “पाण्ड्य देश” के राजा से लेकर “उत्तरापथ” तक तथा “मगध” से लेकर “महाराष्ट्र” तक उनकी विजय-वैजयंती फहराई थी। उस समय खारवेल सार्वभौम सम्राट् हो गये थे। इनका प्रताप एक बार तो चद्रगुप्त और अशोक सा चमका था। उनका सैन्य-संचालन बहुत ऊँचे दर्जे का था।

“सचमुच वह भारतीय नेपोलियन थे।”

खारवेल प्रजा-वत्सल सम्राट् थे। उन्होंने “पौर” और “जनपद” संस्थाओं को स्थापित करके प्रजा की सम्मति के अनुकूल शासन किया था। “पौर” संस्था का सम्बन्ध राजधानी और नगरों के शासन से था। “जनपद” संस्था ग्रामों का शासन करने के लिये नियुक्त थी।

“इस प्रकार शासन का भार जनता के कंधों पर था।”

यही कारण है कि कलिंग से बाहर लड़ाइयों में लगे रहने पर भी खारवेल के शासन-प्रबन्ध में किसी प्रकार की गड़बड़ न होने पाई थी, बल्कि कलिंग की समृद्धि में आशातीत वृद्धि हुई थी।

सम्राट् खारवेल का ध्यान धर्म-वृद्धि की ओर विशेषतया गया। उन्होंने “कुमारी पर्वत” पर जैन मुनियों के लिये गुफाएँ और मंदिर बनवाये। यह वही कुमारी पर्वत है जहाँ पर भगवान् महावीर ने धर्माभूत की वर्षा की थी।

इस पर्वत पर खारवेल ने जैन धर्म का “महा धर्मानुष्ठान” किया। इस सम्मेलन में समस्त भारतवर्ष के जैन यति, ऋषि और पण्डितगण सम्मिलित हुए थे। वहाँ विशेष धर्म-प्रभावना हुई थी। इसी सुवर्ण अवसर पर जैनागम के पुनरुत्थान का उद्योग हुआ था। इस महान् अवसर पर अखिल जैन संघ ने सम्राट् खारवेल को उसकी महान्-विजयों के कारण निम्न पदवियों से विभूषित किया था:—

“खेमराज”

“मिखुराज”

“धर्मराज”

उनके मव्य जीवन चरित को पाषाण-शिला पर लिख दिया गया । यह ‘शिलालेख’ आज भी उड़ीसा प्रांत के ‘खण्डगिरि-उदयगिरि’ पर्वत पर की ‘हाथी गुफा’ में मौजूद है और जैन इतिहास की अमूल्य निधि है । इस शिलालेख में सन् १७० ई० पू० तक खारवेल की जीवन घटनाओं का उल्लेख है । उस समय खारवेल की आयु ३७ वर्ष रही होगी । उनका स्वर्गवास लगभग १५२ ई० पू० अनुमान किया जाता है ।

[जैन-धर्म के आश्रय में आने वाले राज-वंश तथा राज्य]

भारत के भिन्न भिन्न प्रदेशों में कुछ ऐसे राज-वंश उभरे जिनमें कुछ ऐसे अहिंसा-प्रेमी जिन-भक्त राजा हुए जिन्होंने अहिंसा धर्म को प्रतिष्ठित करने में कोर-कसर न छोड़ी। उन्होंने अपनी जीवन-चर्या में भगवान् महावीर के उच्च सिद्धान्तों को स्थान दिया।

कुछेक राजा और सरदार ऐसे भी हुए जो जैन धर्मानुयायी तो नहीं बने वरन् उसको आदर की दृष्टि से देखा और जैन मुनियों के विचारों की प्रशंसा की तथा उनसे प्रभावित होकर उनको अपने राज्य में अधिक से अधिक सुविधाएँ प्रदान की। कभी कभी इन राजाओं के मंत्री तथा सेनापति जैन धर्मी होते थे। ये उच्च कर्मचारी राजा को श्री-वृद्धि एवं विजय-लक्ष्मी प्राप्त कराने में सदा तत्पर रहते थे और राज्य में सुप्रबन्ध कायम करके राजा के विश्वासपात्र बनते थे। इन वंशों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है:—

(i) कलचूरी और कलभ्रवंशी राजा

यह मध्यप्रात का सबसे बड़ा राजवंश था। इसकी आठवी-नवमी शताब्दी में इसका प्रबल प्रताप चमक रहा था। इस वंश के राजा जैन धर्म के विशेष अनुरागी थे।

प्रोफेसर रामस्वामी आयरगर का कथन है कि इनके वंशज आज भी जैन 'कलार' के नाम से नागपुर के आस पास मौजूद हैं।

## (ii) होयसल वंशी राज्य

इस वंश के अनेक राजा, मंत्री और सेनापति जैन धर्मानुयायी थे। 'सुदत्त' मुनि इस वंश के राजगुरु थे। पहले यह चालुक्य के माण्डलिक थे, परन्तु सन् १११६ में इन्होंने स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था।

इस वंश के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक मुनिराज ध्यान कर रहे थे। उनके ऊपर एक शेर झपटा, किसी अन्य पुरुष ने देख लिया उसने दूर से ही आते हुए किसी वीर पुरुष से कहा, "हे सल! इसे मारो" उसने शेर को मार दिया और उसी का वंश होयसल वंश के नाम से विख्यात हुआ जिसमें अनेक प्रतापी राजा महाराजा हुए।

## (iii) गंग वंश

ईसा की दूसरी शताब्दी में गंग राजाओं ने दक्षिण प्रदेश में अपना राज्य स्थापित किया। ग्यारहवीं शताब्दी तक वह विस्तृत भूखण्ड पर शासन करते रहे। यह सब राजा परम जैन थे। 'माधव' इस वंश के प्रथम राजा हुए जिन्हें कोण्णी वर्मा भी कहते हैं। यह जैनाचार्य 'सिहनन्दि' के शिष्य थे। जैनाचार्य सिहनन्दि ने गंगराज्य की नीव डालने में बड़ी सहायता की थी। इस वंश के 'अविनीत' नाम के राजा प्रतिपालक जैनाचार्य 'विजय कीर्ति' कहे गये हैं। सुप्रसिद्ध तत्त्वार्थसूत्र की 'सर्वार्थसिद्धि' टीका के कर्ता आचार्य 'पूज्यपाद देवनन्दि' इसी वंश के सातवें नरेश 'दुर्विनीत' के राजगुरु थे।

गंगनरेश 'मारसिंह' के विषय में कहा गया है कि उन्होंने अनेक मारी युद्धों में विजय प्राप्त करके कई दुर्ग जीतकर एवं अनेक जैन मंदिर व स्तम्भ निर्माण कराकर अतः 'अजितसेन' मट्टारक के समीप बकापुर में पंडित विधि से मरण किया।



मारसिंह के उत्तराधिकारी 'राचमल्ल चतुर्थ' थे जिनके जगत् विख्यात मंत्री और सेनापति 'चामुण्डराय' थे। चामुण्डराय ने श्रवण-बेलगोल के 'विंध्यगिरि' पर 'चामुण्डराय बस्ति' निर्माण कराई तथा 'गोम्मटेश्वर' की उस विशाल ५७ फीट ऊँची प्रस्तर मूर्ति का उद्घाटन कराया जो प्राचीन भारतीय मूर्तिकला—स्थापत्यकला का एक गौरवशाली प्रतीक है।

#### (1V) राष्ट्रकूट राजवंश

ईसा की सातवीं शताब्दी से दक्षिण भारत से जिस राजवंश का बल व राज्यविस्तार बढ़ा, उस राष्ट्रकूट वंश से तो जैन धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। इन राजाओं में 'अमोघवर्ष' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह जैनाचार्य 'जिनसेन' के शिष्य थे। अमोघवर्ष एक विद्वान् राजा थे। इन्होंने 'प्रश्नोत्तररत्नमालिका' ग्रंथ का निर्माण किया। अंग, बंग, मगध, मालवा, चित्रकूट आदि देशों के राजा अमोघवर्ष की सेवा में रहते थे। गुजरात सहित दक्षिण प्रदेश पर इनका शासन रहा था। अन्तिम समय में राज-पाट त्याग कर अमोघवर्ष जैन मुनि बन गये थे।

इनके उत्तराधिकारी 'कृष्ण द्वितीय' के काल में 'गुणभद्राचार्य' ने 'उत्तर पुराण' को पूरा किया, 'इन्द्रनदि' ने 'ज्वाला-मालिनी-कल्प' की रचना की, 'सोमदेव' ने 'यशस्तिलक चम्पू' नामक काव्य रचा तथा 'पुष्पदंत' ने अपनी विशाल श्रेष्ठ 'अपभ्रंश' रचनाएं प्रस्तुत की। कृष्ण द्वितीय ने कन्नड़ के सुप्रसिद्ध जैन कवि 'कौन्न' को 'उभय-भाषा-चक्रवर्ती' की उपाधि से विभूषित किया।

अमोघवर्ष के पुत्र 'अकालवर्ष' और उसके वंशज जैन धर्म के दृढ़ अनुयायी थे। उनमें से 'इन्द्र' नरेश ने मुनिदीक्षा अंगीकार की थी।

वाड़ा में मूलवस्तिका नामक जैन मंदिर बनवाया जो अब भी विद्यमान है ।

चालुक्य नरेश भीम प्रथम द्वारा जैनधर्म का विशेष प्रसार हुआ । उसके मंत्रीविमल शाह ने आबू पर्वत पर आदिनाथ भगवान् (शृषभदेव) का वह जैन मंदिर बनवाया जिसमें भारतीय स्थापत्य कला का उत्कृष्ट दर्शन हुआ है । जिसकी सूक्ष्म चित्रकारी, बनावट की चतुराई तथा सुदरता जगत् विख्यात मानी गई है । यह आलीशान मंदिर सन् 1013 में सात वर्ष के भीतर बन कर तैयार हुआ । विमलशाह ने तेरह सुलतानों के छत्रों का अपहरण किया था और चद्रावती नगरी की नीव डाली थी । सच तो यह है:—

‘कि उसी काल में महमूद गजनवी द्वारा विध्वंस किये गये सोमनाथ मंदिर का यह प्रत्युत्तर था ।’

जैन मंत्री विमलशाह ने यह लोकविख्यात कार्य सम्पन्न करके भारतीय स्थापत्य कला, भारतीय भवित एव भारतीय शक्ति का स्वच्छ अहिंसक रूप उपस्थित किया था जो निर्भयता और शूरवीरता से परिपूर्ण था ।

चालुक्य नरेश “सिद्धराज” और उसके उत्तराधिकारी “कुमार पाल” के समय में जैन धर्म का और भी अधिक बल बढ़ा । कलिकाल सर्वज्ञ, प्रसिद्ध जैनाचार्य “हेमचंद्र” के उपदेश से राजा कुमार पाल ने स्वयं खुलकर जैन धर्म धारण किया और गुजरात की जैन सस्थाओं को खूब समृद्ध बनाया जिसके फलस्वरूप गुजरात प्रदेश सदा के लिये धर्मानुयायियों की सख्या तथा सस्थाओं की समृद्धि दृष्टि से ‘जैन धर्म का एक सुदृढ़ केन्द्र बन गया ।

वर्तमान युग के महापुरुष महात्मा गाँधी जी पर अहिंसा का जो प्रभाव पड़ा उसका गुजरात के मूलकारण श्री मद रायचन्द्र भाई थे ।

गांधी जी ने विलायत जाते समय मांस नहीं खाना, शराब नहीं पीना और किसी की स्त्री को बुरी दृष्टि से नहीं देखना तीन प्रतिज्ञायें जैन साधु बेचर स्वामी से ली और उनका जन्म भर पालन किया । विलायत से लौटने पर वे श्री रायचन्द्र भाई के सम्पर्क में आए और उनके शतावधानी गुण के कारण अत्यधिक प्रभावित हुए । अफ्रीका में जब एक अग्रेज उन्हें ईसाई बनाने का असफल प्रयत्न करने लगा तो उन्होंने 27 प्रश्न रायचन्द्र भाई से किए जिनका उत्तर पा वे सन्तुष्ट हुए और उन्हें हिन्दूधर्म में सभी बातें मिल गई जो वे चाहते थे । उनके जीवन पर तीन व्यक्तियों की छाप पड़ी है—टालस्टाय से पत्रव्यवहार द्वारा, रस्किन की एक पुस्तक जिसका उन्होंने सर्वोदय नाम रक्खा और रायचन्द्र भाई के साथ सम्पर्क में आकर । इसलिए उनके मन में उनके प्रति बहुत आदर था ।

गांधी जी ने अहिंसा के द्वारा ही देश को स्वतन्त्र बनाया । यह महान् कार्य किसी धार्मिक कट्टरता के बल पर नहीं किन्तु नाना धर्मों के प्रति “सद्भाव व सामजस्य” बुद्धि द्वारा ही किया गया था ।

यही प्रणाली जैन धर्म का प्राण रही है ।

धर्म की अविच्छिन्न परम्परा एव उसके अनुयायियों की समृद्धि के फलस्वरूप ई० सन् 1230 में सेठ “तेजपाल” ने “आबू पर्वत” पर उक्त आदिनाथ मंदिर के समीप ही ‘भगवान् नेमिनाथ का मन्दिर’ बनवाया जो अपनी शिल्प कला में केवल उस मन्दिर के ही तुलनीय है ।

12वीं व 13वीं शताब्दी में और भी अनेक जैन मन्दिरों का आबू पर्वत पर निर्माण हुआ जिस कारण से उस स्थान का नाम ‘देलवाडा’ (दिलवाड़ा) अर्थात् देवों का नगर पड़ गया । इसी प्रकार

गिरनार और शत्रुंजय तीर्थ क्षेत्रों में भी विपुल धन राशि व्यय करके जैन शूरवीर भक्तों ने विचित्र मन्दिरों का निर्माण कराया ।

#### (4) विजय नगर साम्राज्य:—

मुसलमानी आक्रांताओं के विरोध स्वरूप 'संगम' सरदार के पाँच पुत्रों ने सन् 1336 ई० में तुंगभद्रा नदी के तट पर विजयनगर को बसाया । सन् 1463 में 'हरिराय' का राज्य-अभिषेक किया गया । शक्ति संचय कर विजयनगर एक शक्तिशाली राज्य बन गया । 'कृष्णदेव राय' (1509-30) सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रतापी एवं शक्तिशाली नरेश था । इस वंश के अन्य राजा भी सब धर्मों के प्रति अत्यन्त सहिष्णु थे ।

इस वंश का 'देवराय द्वितीय' जैन धर्म का उपासक था । उसके राज्य में आचार्य 'नेमिचंद' ने शास्त्रार्थ में अन्य विद्वानों पर विजय पाई थी ।

सन् 1564 में 'तलीकोट' के युद्ध में दक्षिण के पाँचों 'बहमनी सुल्तानों' ने विजयनगर राज्य का विध्वंस कर दिया ।

भगवान् महावीर के युग में जैन धर्म भारत के विभिन्न भागों में फैला। इसका जिक्र पहले किया जा चुका है। सम्राट् अशोक के पुत्र सम्राट् सम्प्रति ने जैन धर्म का सन्देश भारत के बाहर भी पहुँचाया। उस समय जैन मुनियों का विचरण-क्षेत्र भी विस्तृत था।

(i) श्री “विश्वम्भर नाथ पाण्डे” ने अहिंसक परम्परा की चर्चा करते हुए लिखा है:—

“ईसा की पहली शताब्दी में और उसके पीछे हजार वर्ष तक जैन धर्म “मध्य-पूर्व” (Middle East) के देशों में किसी न किसी रूप में “यहूदी धर्म” “ईसाई धर्म” और “इस्लाम धर्म” को प्रभावित करता रहा है”

(ii) प्रसिद्ध जर्मन इतिहास-लेखक “वान क्रैमर” के अनुसार मध्य-पूर्व में प्रचलित “समानिया” सम्प्रदाय “श्रमण” शब्द का अपभ्रंश है।

(iii) इतिहास लेखक “जी० एफ० मूर” लिखता है:—

“हजारत ईसा के जन्म की शताब्दी से पूर्व ‘ईराक’, ‘श्याम’ और ‘फिलस्तीन’ में जैन मुनि और बौद्ध भिक्षु सैकड़ों की संख्या में फैले हुए थे।”

(iv) “सियाहत-नामा-ए-नासिर” का लेखक लिखता है कि इस्लाम धर्म के ‘कलन्दरो’ तबके पर जैन धर्म का काफी प्रभाव पड़ा

था। कलन्दर आर नियमो का पालन करते थे — 1. 'साधुता 2. शुद्धता 3. सत्यता और 4. दरिद्रता'। वे अहिंसा पर अखण्ड विश्वास करते थे। जैन धर्म का प्रसार अहिंसा, शान्ति, मैत्री और सयम का प्रसार था। इसलिये उस युग को भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग (Golden Age) कहा जाता है''।

(v) पुरातत्व विद्वान् पी० सी० राय चौधरी के अनुसार:—

“यह धर्म (जैन धर्म) धीरे धीरे फैला, जिस प्रकार ईसाई धर्म का प्रचार यूरोप में धीरे धीरे हुआ। श्रेणिक, कुणिक, चन्द्रगुप्त, सम्प्रति, खारबेल तथा अन्य राजाओं ने जैन धर्म को अपनाया। वे शताब्द भारत के हिन्दू-शासन के वैभवपूर्ण युग थे, जिन युगों में जैन-धर्म सा महान् धर्म प्रसारित हुआ।”

(vi) भगवान् महावीर ने समाज के जो नैतिक मूल्य स्थिर किये, उनमें दो बातें सामाजिक और नैतिक दृष्टि से भी अधिक महत्वपूर्ण थी:—

(अ) अनाक्रमण — सकल्पी हिंसा का त्याग

(आ) इच्छा परिमाण — परिग्रह का समीकरण

‘यह लोकतन्त्र या समाजवाद का प्रधान सूत्र है। वाराणसी संस्कृत विद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति श्री आदित्य नाथ झा ने इस तथ्य को इन शब्दों में व्यक्त किया है:—

‘भारतीय जीवन में प्रजा और चरित्र का समन्वय जैनो और बौद्धों की विशेष देन है। जैन दर्शन के अनुसार सत्यमार्ग परम्परा का अध्यानुसरण नहीं है, प्रत्युत तर्क और उपपत्तियों द्वारा सम्मत तथा बौद्धिक रूप से सतुलित दृष्टिकोण ही सत्य मार्ग है। इस दृष्टिकोण की

प्राप्ति तभी सम्भव है जब मिथ्या विश्वास पूर्णतः दूर हो जाये। इस बौद्धिक आधार-शिला पर ही अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के बल से सम्यक् चरित्र को प्रतिष्ठित किया जा सकता है।”

जैन धर्म का आचार शास्त्र भी जनतन्त्रवादी भावनाओं से अनुप्राणित है। जन्मतः सभी व्यक्ति समान हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्य और रुचि के अनुसार गृहस्थ या मुनि हो सकता है।

अपरिग्रह सम्बंधी जैन धारणा भी विशेषतः उल्लेखनीय है। आज इस पर अधिकाधिक बल देने की तथा इसे आचरण में लाने की आवश्यकता है, जैसा कि प्राचीन काल के जैन विचारकों ने किया था। ‘परिमित परिग्रह’ — उनका आदर्श वाक्य था। ‘सम्भवतः भारतीय आकाश में समाजवादी समाज के विचारों का यह प्रथम उद्घोष था’

(vii) प्रत्येक आत्मा में अनंत शक्ति के विकास की क्षमता, आत्मिक समानता, क्षमा, मैत्री, विचारों का अनाग्रह आदि के बीज जैन धर्म ने बोये थे। महात्मा गांधी का निमित्त पा वे केवल भारत के ही नहीं, विश्व की राजनीति के क्षेत्र में भी पल्लवित हो रहे हैं।

(viii) जैन धर्म पहले बिहार प्रांत में पल्लवित हुआ। कालक्रम से वह बंगाल, उड़ीसा, उत्तर-दक्षिण भारत, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रांत और राजपूताना में फैला। विक्रम की सहस्राब्दी के पश्चात् शैव, लिगायत, वैष्णव आदि वैदिक सम्प्रदायों के प्रबल विरोध के कारण जैन धर्म का प्रभाव सीमित हो गया। अनुयायियों की अल्प संख्या होने पर भी जैन धर्म का सैद्धांतिक प्रभाव भारतीय चेतना पर व्याप्त रहा। बीच-बीच में प्रभावशाली जैनाचार्य उसे उद्बुद्ध करते रहे। विक्रम की बारहवीं शताब्दी में गुजरात का वातावरण जैन धर्म से प्रभावित था।

(ix) गुर्जर नरेश ‘जर्यासिंह’ और ‘कुमार पाल’ ने जैन धर्म को बहुत ही प्रश्रय दिया। कुमार पाल का जीवन जैन-आचार का प्रतीक बन गया।

(x) सम्राट् “अकबर” “श्री हीर विजय सूरि” से प्रभावित थे । इस सम्बंध में अमरीकी दार्शनिक “बिल इयूरेण्ट” ने लिखा है:—

“अकबर ने जैनों के कहने पर शिकार छोड़ दिया था और नियत क्रियाओं पर हत्याएँ रोक दी थी । जैन धर्म के प्रभाव से ही अकबर ने अपने द्वारा प्रचारित ‘दीन-ए-इलाही’ नामक सम्प्रदाय में ‘मांस-भक्षण के निषेध का नियम’ रखा था ”

(xi) जैन मंत्री, दण्डनायक और अधिकारियों के जीवन वृत्त बहुत ही विस्तृत हैं । वे विधर्मी राजाओं के लिये भी विश्वासपात्र रहे हैं । उनकी प्रामाणिकता और कर्तव्य-निष्ठा की व्यापक प्रतिष्ठा थी ।

राष्ट्रीय भावना से समन्वित हमेशा जैन धर्मानुयायी रहे आशा-शाह ने महाराणा प्रताप के पिता उदयसिंह की रक्षा का भार लिया और युवराज होने पर चित्तौड़ की गद्दी पर बिठलाया । चित्तौड़, उदयपुर के परास्त हो जाने पर महाराणा प्रताप जब सिन्धु को जाने लगे और मातृभूमि को अन्तिम प्रणाम ज्यों ही किया उसी समय आमाशाह आए और राणा के चरणों में इतना धन लाकर पटक दिया जिससे 24000 सैनिक बारह वर्ष तक युद्ध लड़ सकते थे ।

राणा ने कहा आमा इतना धन पाने पर तुम्हें लालच नहीं आया? आमा:-महाराज यह सभी सम्पत्ति देश की है, आप जंगल की खाक छाने और मैं ऐश्वर्य भोगूँ !

राणा ने मिट्टी उठाई और आमा के मस्तक पर तिलक कर दिया और कहा जब तक मेरे वंश में कोई राजा रहेगा और तेरे वंश में पुत्र रहेगा वह इस राज्य का मंत्री और सेनापति बनेगा ।

जैनत्व का अकन तप त्याग आदि चारित्रिक मूल्यों से ही हो सकता है ।



महान् महावीर की सच्ची और सादा तालीम तथा उनके शुद्ध आचरण का भारतीय जनता के समस्त वर्गों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। समाज के पिछड़े हुए पददलित तथा उपेक्षित वर्ग को बीर-बाणी' सुखद और प्रिय लगी। उस समय पांव-की-जूती समझी जाने वाली स्त्री-समाज को पुरुष समाज के समकक्ष खड़ा करके 'समान अधिकारों' की जो बात महावीर ने कही वही सामाजिक क्रांति का नाद था। धर्म के नाम पर पशु-पक्षियों की बलि, जीव-हिसा, आडम्बरवाद, जाति-अभिमान, असमानता, असहिष्णुता—ये भारतीय समाज के 'कलंक' थे। महावीर ने जब यह सब कलंक धो डाले तो उसका व्यापक प्रभाव पड़ा। 'अहिंसा धर्म' की दुंदुभि चहुं ओर बज उठी। जैन धर्म जन-जन का धर्म बन गया। जैन धर्म का विकास निम्न कारणों से हुआ:—

(i) मध्य मार्ग:—

जैन धर्म प्रत्येक आदमी को उसकी शक्ति और भावना के अनुसार धर्माचरण करने का उपदेश देता है। 'मुनि' और 'गृहस्थ' का अलग अलग विधान बनाकर तथा 'देश' 'काल' 'भाव' के अनुसार आचरण करने की छूट देकर सतुलित समाज की बुनियाद डाली।

(ii) समन्वय:—

जैन धर्म ने भिन्न-भिन्न विचारों का सापेक्ष दृष्टि से समन्वय किया। भिन्नता में एकता (Unity in Diversity) को समाज में

प्रतिष्ठित कर आपसी झगड़ों को दूर किया। समाज में धृष्टा का स्थान सहिष्णुता और पारस्परिक प्रेम ने ले लिया जो शक्ति का परिचायक बना।

### (iii) समानता:—

जैन धर्म ने जाति-भेद, रंग-भेद, लिङ्ग-भेद, भाषा-भेद को दूर किया। इसलिये साधारण जनता ने हृदय से इस धर्म का स्वागत किया।

### (iv) परिवर्तन की क्षमता:—

जैन चिंतकों ने सामाजिक परम्परा को 'शाश्वत' का रूप नहीं दिया। इसलिये, जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है, समाज में 'देश' और 'काल' के अनुसार परिवर्तन का अवकाश रहा। यह जनता के आकर्षण का सबल हेतु था।

### (v) सैद्धांतिक सहिष्णुता:—

दूसरे धर्मों के सिद्धांतों को सहने की क्षमता के कारण जैन धर्म दूसरों की सहानुभूति अर्जित करता रहा।

### (vi) जैन भाषा:—

जैन तीर्थंकरों और आचार्यों ने अपना उपदेश रोजमर्रा बोली जाने वाली जन-साधारण की भाषा में दिया। उन्होंने देव-भाषा (संस्कृत) का मोह नहीं किया। इसी लिये जैनों के धर्म शास्त्र (जैन-गम) अधिकतर 'मागधी' अर्द्धमागधी, 'प्राकृत', शौरसेनी, 'महाराष्ट्री' तथा 'अपभ्रंश' भाषाओं में मिलते हैं।

### (vii) अहिंसा का व्यवहार में प्रयोग:—

इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि पशु-हिंसा यज्ञों में नितात

वर्जित हो गई । दिल्ली तथा उसके आस-पास के प्रदेश हरियाणा, पश्चिमी यू० पी०, मध्यप्रदेश, राजपूताना, महाराष्ट्र तथा गुजरात के अधिकांश सभी जातियों के लोग अहिंसा की प्रतिष्ठा करते हैं ।

### (vii) प्रामाणिकता:—

जैन गृहस्थ अहिंसा पालन के साथ कर्तव्य के प्रति बहुत जागरूक थे । वे देश के विकास और रक्षा के लिये अपना सर्वस्व समर्पित कर देते थे जैसे कि निकट अतीत में राजस्थान में महाराणा प्रताप के मंत्री 'भामा शाह' जैन ने आपत्कालीन स्थिति में अपनी समस्त सम्पत्ति देश-रक्षा हित महाराणा को सौंप दी थी ।

दक्षिणी भारत में जैन समाज ने शिक्षा (ज्ञान दान), जीविका (अन्नदान), चिकित्सा (औषध दान), अहिंसा (अभयदान) के माध्यम से जैन धर्म को 'जैन धर्म का वास्तविक रूप' दे दिया था ।

### (ix) सशक्त और कुशल आचार्यों का नेतृत्व:—

नीतिवान्, आचारवान्, प्रज्ञावान् तथा शक्तिवान् आचार्यों ने देश, समाज और साहित्य की जो सेवा की वह बेजोड़ है । उनकी महान् कृतियों का दिग्दर्शन आगे कराया जायेगा ।

### (X) जैन धर्म राज-धर्म:—

चंद्रगुप्त मौर्य, सम्प्रति, खारवेल, अमोघवर्ष, कुमारपाल आदि राजा तथा चामुण्डराय जैसे सेनापतियों व विमल शाह, वस्तुपाल, तेजपाल, भामाशाह आदि जैसे दक्ष मंत्रियों, सेठ-साहूकारों तथा अन्य उच्चाधिकारियों द्वारा जैन धर्म की मान्यता से जैन धर्म के विकास में विशेष योगदान मिला ।

विश्व की प्रत्येक प्रवृत्ति को, प्रत्येक विचारधारा को उतार-चढ़ाव से दो चार होना पड़ता है। कोई भी प्रवृत्ति सदा के लिये उन्नति या अवनति के बिंदु पर अवस्थित नहीं रह सकती।

विक्रम की नवी-दशमी शताब्दी में स्थितियों में परिवर्तन आने लगा। फलतः जैन धर्म के विकास मार्ग में अनेक बाधाएं आ उपस्थित हुईं, जिसके कारण वह अवनति की ओर अग्रसर हुआ। नीचे हास के कुछेक कारणों का उल्लेख किया जाता है:—

(i) आंतरिक पवित्रता और शक्ति की कमी व बाह्यकर्म-काण्डों की प्रचुरता:—

तालाब में भारी पत्थर फेंकने से सशक्त जलतरंगें उठती हैं परन्तु किनारों के पास आते आते वे कमजोर पड़ जाती हैं। इसी प्रकार समय बीतने पर जैन धर्मानुयायी धर्माचरण में शिथिल होते गये। परिणामतः धर्म का स्थान दिखावे में ले लिया। बाहरी कर्म-काण्ड को ही धर्म मान लिया गया।

(ii) व्यक्तिवादी मनोवृत्ति:—

दूसरों की हानि से, विपत्ति से मुझे क्या वास्ता? मैं दूसरों के लिये क्यों कर्म बांधूँ। 'पराई तुझे क्या पड़ी अपनी निबेड़ तू'। इस प्रकार के 'एकान्तिक निवृत्तिवादी चिन्तन' ने धर्म के सामाजिक रूप को बड़ी हानि पहुँचाई। कुछ लोगो का विचार है कि वस्तुतः इस 'व्यक्तिवादी मनोवृत्ति' की जड़ हमारे उन सैद्धांतिक विचारों में पाई

जाती है जिसमें यह दर्शाया गया है कि हमारा उद्देश्य 'आत्म-मुक्ति, निजीमुक्ति या व्यक्तिगत मुक्ति' है। इन विचारों से हम समाज से अलग जा पड़ते हैं। हम सामाजिक संगठन या सामाजिक शक्ति का ह्रास होते देखकर अधिक चिन्तित नहीं होते क्योंकि हमारे आत्म-हानि का रूप सामाजिक न होकर 'व्यक्तिगत' हो जाता है।

### (iii) राज्य-आश्रय से बंचित:—

राज्य-आश्रय हटने से जैन धर्म को बड़ी हानि पहुँची। इससे जैन-आचार्यों के कार्य-क्रम में बड़ा व्यवधान पड़ा। राज्याश्रय न रहने से राज-शक्ति विरोधी पक्ष के इशारे पर नाचने लगी और जैन धर्म को हानि पहुँचाने पर उतर आई। अनेक कठिनाइयों का वातावरण उत्पन्न हो गया।

### (iv) असफल नेतृत्व: —

जैन धर्म में ऐसे नेतृत्व का अभाव हो गया जो राजनीति और धर्मनीति को साथ साथ लेकर चल सकता। धर्मनीति के मुकाबले में राजनीति की उपेक्षा की जाने लगी। एक आचार्य का कथन है कि धर्म 'पंगु' है, यह किसी के सहारे ही चल सकता है। धनी और सत्ताधारी वर्ग इसके प्रचार साधनों को जुटाते हैं और इसकी गति को तीव्र करते हैं।

धर्म प्रचार में जो शिथिलता आई उसका प्रमुख कारण साधु-संस्था का अभाव, धन के प्रति तीव्र मोह, और मानसिक स्वार्थवृत्ति थी। जिसने प्राचीन धारा को दूसरी ओर मोड़ दिया। धन सम्पत्ति का उपयोग जिन कार्यों में खर्च होना चाहिए था वहाँ न होकर अन्य कम उपयोगी कार्यों में व्यय हुआ। फल स्वरूप जागृति का प्रवाह रुक गया।

(v) **अन्य धर्मों का बढ़ता हुआ प्रभाव:—**

जैनज्म (Jainism) अन्य धर्मों के बढ़ते हुए प्रभाव को उपेक्षा की दृष्टि से देखता रहा और उनके विकास साधनों को अपनाने की कोशिश नहीं की, प्रत्युत अपने आप को 'एकांततः आध्यात्मिक' बनाये रखने की प्रवृत्ति उत्पन्न करली। इस प्रकार व्यर्थ में ही पृथक्त्व (Isolation) से अपने आप को दण्डित कर लिया।

(vi) **जैन धर्म का विभाजन:—**

जैन धर्म सदा के लिये दिगम्बर, श्वेताम्बर दो बड़े सम्प्रदायों में बंट गया। इन दोनों सम्प्रदायों ने आपसी विरोध की पक्की दीवारें खड़ी कर ली। समय बीतने पर ये दो सम्प्रदाय आगे कई छोटे छोटे भागों में बंट गए। साधारण नियमों पर ऊहापोह होने लगी। इस प्रकार ये शाखाएं और उपशाखाएं एक दूसरे से द्वेष और घृणा करते हुए समय बिताने लगी और अपनी शक्ति कमजोर करने लगी। इससे जैन धर्म के 'केन्द्रीय संगठन' को भारी धक्का लगा।

(vii) **उत्तर गुणों को प्राथमिकता:—**

उत्तरकालीन आचार्यों ने पिछली दो तीन शताब्दियों से गृहस्थों को जो उपदेश दिये उनमें मूलगुणों के स्थान पर उत्तरगुणों का अत्यधिक प्रचार किया गया—जैसे हरी शाक सब्जी का त्याग आदि।

(viii) **जैन सम्प्रदायों के भिन्न-भिन्न धर्मशास्त्र:—**

जैन दिगम्बर सम्प्रदाय का मत है कि 'आगम' नष्ट हो चुके हैं। वे 'षट्खण्डागम' को मानते हैं जिसका आचार्य पुष्पदंत और आचार्य भूतबलि ने संकलन किया था। जैन श्वेताम्बर 45 आगमों को मानते हैं। जैन श्वेताम्बर स्थानकवासी 32 आगम प्रमाण मानते हैं। ये सभी मतभेद धर्माचार्यों और पण्डितों के भिन्न भिन्न विचारों के

कारण से निकले हैं। इस कारणसे दिगम्बर और श्वेताम्बर 'आस्था' में एक दूसरे से दूर दिखने लगे हैं।

### (1X) अत्यंत विस्तृत आचार शास्त्रः—

नियमानुनियम विस्तार इतना अधिक हो गया है कि यह जानना कठिन हो गया है कि कहाँ से आरम्भ-करे और कहाँ समाप्त करे। गाना, बजाना, नाचना, मकान बनाना, नहाना-धोना, फल फूल खाना व तोड़ना, भ्रमण, व्यायाम आदि जीव-हिंसा में शुमार होने लगे तथा आत्म-विकृति का रूप माने जाने लगे। प्रत्येक क्रिया-कलाप में जीव-हिंसा का प्रश्न खड़ा कर देने से जनसाधारण तग आ गए।

### (X) दम्बू श्रावकवर्गः—

एक समय ऐसा आया कि शास्त्र पठनपाठन केवल जैन मुनियों का कार्य बन कर रह गया। जैन 'गृहस्थ' (श्रावक) केवल तहत वचन महाराज (मुनि महाराज जो कथन कहते हैं वह सर्वथा सत्य है) कहने वाला एक ज्ञानहीन तथा शक्तिहीन वर्ग बन कर रह गया। इन श्रावकों का मुख्य कर्तव्य अपने 'गच्छ' (टोले) के गुरु या आचार्य के बताए हुए मार्ग पर चलना था और अपनी परम्परा के अतिरिक्त जैनो की शेष आचार्य परम्पराओं को गलत मानना और इशारा पाते ही उनका विरोध भी करना था।

अगर खोज-बीन की जाये तो कहना पड़ेगा कि वैज्ञानिक युग से पूर्व (आज से सौ डेढ़ सौ वर्ष पहले) श्रावक 'भेड बकरी' के समान था जिसके हृदय और पीठ पर अपने गच्छ के आचार्य की छाप लगी हुई थी, जिससे बलात् उसे अपने साम्प्रदायिक पिजड़े की सीमा के अन्दर ही रहना पड़ता था। इस प्रकार 'पृथक्करण नीति' से जैन धर्म को असीम क्षति पहुँची।

स्याह्लाद अथवा अनेकांतवाद ग्रंथों में लिखा रह गया और व्यवहार में उसका स्थान 'आग्रहवाद' ने ले लिया ।

### (xi) क्षात्र-तेज से वनिक-वृत्ति की ओर:—

भगवान् महावीर ने केवल ज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् क्षात्र-तेज और ब्रह्म-तेज का सुन्दर सम्मिश्रण उपस्थित किया था । क्षात्र वृत्ति एक दम निःस्वार्थ तथा दूसरों को सहायता व संरक्षण देने वाली लोक-कल्याण वृत्ति है । जब तक जैन धर्म को क्षात्र तेज व ब्रह्म तेज का आश्रय रहा वह विकासोन्मुख ही रहा, प्रगतिशील ही रहा । परन्तु जब क्षात्र तेज नष्ट हो गया और ब्रह्मतेज कमजोर पड़ने लगा तो असंतुलन पैदा हुआ । परिणामतः अहिंसा ने कायरता का रूप ले लिया । सुख-शान्ति-वैभव प्राप्ति की इच्छा प्रबल हुई । आत्म-रक्षा के लिए भी युद्ध हिंसा-परक हो गया । क्षात्रतेज नष्ट हुआ, ब्रह्मतेज क्षीण हुआ और कृषि में हिंसा नज़र आने लगी । केवल 'व्यापार' में या सूदखोरी में हमें अहिंसा नज़र आई ।

आज सारे का सारा जैन समाज अधिकांश व्यापारी वर्ग से सम्बन्ध रखता है । क्षात्र तेज और ब्रह्मतेज में हम 'शून्य' के बराबर हैं । हमारी क्रय-शक्ति व्यापार के कारण जरूर बढ़ी है परन्तु किन किन साधनों से ? ज्ञान, शक्ति और आचार की किसी भी मूँकियाँ पर हमारा नाम निशान नज़र नहीं आता ।

परिणाम यह हुआ है कि थपेड़े खाते खाते 50 करोड़ की संख्या में से अब हम केवल पचास लाख ही बचे होंगे ।

इसी संदर्भ में एक संस्मरण पेश कर रहा हूँ । ज़रा विचार से पढ़ियेगा—

'बात सन् 1954 की है । पण्डित जवाहर लाल नेहरू उस समय



भारत के प्रधान मंत्री थे। सन् 1954 से पूर्व भी भारत के संसद जैनियों ने प्रतिवर्ष उनकी सेवा में कांगड़ी रेजोल्यूशन भेजकर तथा प्रतिनिधि मण्डल उनकी सेवा में उपस्थित करके, हजार अनुनय-विनय की थी कि भगवान् महावीर स्वामी, जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर, जिन्होंने भारत ही नहीं वरन् समस्त विश्व को 'सत्य और अहिंसा' का प्रशस्त मार्ग दिखाया, उनके जन्म दिन चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को भारतवर्ष में गजेटिड (राजपत्रित) छुट्टी घोषित की जाये।

इसमें सदेह नहीं कि पण्डित नेहरू जैन धर्म व जैन समाज का आदर करते थे परन्तु उन्होंने आजन्म जैनों के इस छुट्टी के प्रस्ताव को कभी कोई महत्त्व नहीं दिया और न ही भगवान् महावीर के जन्मदिन की छुट्टी कभी घोषित की।

दिल्ली जैन समाज ने गांधी ग्राऊन्ड में तथा नई दिल्ली में कई बार 'महावीर जयन्ती' के उपलक्ष्य में राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र प्रसाद तथा प्रधान मंत्री पण्डित नेहरू जी को आमंत्रित किया, उनका फूल मालाओं से स्वागत किया और बड़े आदरपूर्वक अपनी पुरानी बिनती को बोहराया, परन्तु तृती की आवाज नकारखाने में कौन सुनछा है ?

पुनः, जब उपर्युक्त बहुचर्चित प्रस्ताव लेकर समग्र भारत के जैनियों का प्रतिनिधिमण्डल श्री नेहरू को उनके निवास स्थान पर मिला तो उस समय पण्डित जी ने प्रसन्न मुद्रा में उपस्थित विदेशी राजनीतिज्ञों को सम्बोधित करते हुए कहा:—

'कि भारतवर्ष में यही (जैन समाज) एक ऐसा अहिंसक वर्ग है जिससे भारत सरकार को कोई भय या खतरा नहीं है'

यह शब्द जैन समाज की कमजोरी प्रदर्शित करते हैं या उसकी

प्रशंसा, इसका निर्णय हम आप पर ही छोड़ते हैं। परन्तु इतनी ललो-चप्पो के बावजूद भी 'महावीर जयन्ती की छुट्टी मजूर नहीं की गई।

इसके विपरीत 'बुद्ध पूर्णिमा' की छुट्टी बिना मांगे सारे भारतवर्ष में घोषित की गई और महात्मा बुद्ध का 25 वीं शताब्दी समारोह बड़े सजधज से सरकारी स्तर पर मनाया गया जिसमें भारत सरकार का करोड़ों रुपया खर्च हुआ।

सुभाष बाबू ने एक बार कहा था—तुम खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा। यह सच है कि बिना बलिदान दिये, बिना त्याग किये, केवल कागजी घोड़े दौड़ा कर, सफलता नहीं मिला करती। वस्तुतः आत्म-दर्शी होने की बजाय हमने आत्मघात ही किया है।

समस्या गम्भीर है और विचारणीय है।

## जैन धर्म—ह्रास की रोक थाम कैसे हो

राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भारतीय समाज को चेतावनी-रूप एक स्थान पर कहा था:—

‘हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी ?

आओ विचारे आज मिलकर ये समस्याएँ सभी’।

यदि रोग का निदान समझ में आ जाये तो उसका इलाज सहज ही हो सकता है। यदि उन्हें दूर कर दिया जाये तो पुनः विकास मार्ग की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है। जैन धर्म के ह्रास को रोकने के लिये कुछ उपाय नीचे कहे जाते हैं:—

### (1) भिन्नता में एकता:—

शताब्द और सहस्राब्द व्यतीत हो गये भिन्नता का अभ्यास करते हुए। अब उसी भिन्नता में एकता के दिग्दर्शन करने का प्रयास होना चाहिए। दिग्म्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरापथी आदि निःसंकोच अपनी मान्यताएँ कायम रखे परन्तु विवादास्पद प्रश्नों के सम्बन्ध में दुराग्रह करना छोड़ दे जैसे:—

(अ) मुक्ति अचेलक को या सचेलक को ?

(आ) स्त्री को मोक्ष है या नहीं ?

(इ) मूर्ति पूजा ग्राह्य है या वर्जित ?

(ई) गेहूँ के दाने में बीज है या नहीं ?

(उ) मुखवस्त्रिका मुख पर डोरे के साथ धारण की जाय या

हाथ में रखी जाये ?

(ऊ) महावीर का विवाह-सम्बन्ध हुआ था या नहीं इत्यादि ।

जिस सम्प्रदाय की जो आस्था है वह उसका पूर्णतया पालन करे, परन्तु खण्डन-मण्डन अथवा वाद-विवाद के कुचक्र में न पड़े । आग्रह-वाद का त्याग किया जाये । स्याद्वाद तथा अनेकांतवाद को प्रतिष्ठित किया जाये और शूरुआत अपने से ही की जाये । “खण्डन नीति” को निरुत्साहित किया जाये और ‘एकता’ पर बल दिया जाये ।

‘एकता की आवाज’ बुलंद करने वालों को जैन समाज विशेष सम्मानित व पुरस्कृत करे । इस उद्देश्य के लिये युवा-पीढ़ी की ओर जनमत तैयार किया जाये ।

वर्ष-भर में ‘जैन धर्म की एकता’ पर एक-दो स्थानीय, प्रांतीय तथा केन्द्रीय समारोह व्यवस्थित किये जायें ।

आकाशवाणी से जैन पृथ्वी तिथियों पर ‘जैन एकता’ सम्बन्धी ‘वार्ता’ प्रसारित की जाये । इस विषय पर शिक्षा सस्थानों में निबन्ध व भाषण प्रतियोगिताएँ व्यवस्थित की जायें ।

(ii) अंतर्जातीय विवाह प्रथा:—

अग्रवाल, ओसवाल, खण्डेलवाल, पल्लीवाल, दिगम्बर, श्वेताम्बर स्थानकवासी, तेरापथी आदि अनेक जैन वर्ग आपस में विवाह-सम्बन्ध स्थापित करें । विचारों की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप न किया जाये । भगवान् के केवल व्यापक मूल सिद्धान्तों—जैसे अहिंसा आदि—के पालन पर ही बल दिया जाये । इससे विषमता घटेगी, प्रेम बढ़ेगी, एक दूसरे के निकट आने का अवसर मिलेगा और यथार्थ धर्म की उन्नति होगी ।

### (iii) जागरूक तथा विवेकशील श्रावक:—

इस वैज्ञानिक युग में, बदलती दुनिया के साथ कदम मिलाकर चलने वाला श्रावक चाहिये। वैसे भी महावीर ने हमें 'देश, काल, भाव' के अनुकूल परिवर्तन लाने की स्वतंत्रता दे रखी है। पुरानी मान्यताओं को मरी हुई बदरिया के समान गले से चिपकाये रखना कोई बुद्धिमत्ता की बात नहीं है:—

सदा एक ही रख नहीं नाव चलती,  
चलो तुम उधर को हवा हो जिधर की।

विवेकशील श्रावक (गृहस्थ) इस बात का ध्यान रखेगा कि कोई उसका पुरखा या सजातीय या मित्र उसे एकता के पथ से विचलित तो नहीं कर रहा। 'एकता की पतवार' को अब हरगिज नहीं छोड़ना है और एकता विरोधी प्रवृत्तियों का बहिष्कार करना है।

विवेकशील श्रावक को 'सहिष्णुता' से प्यार करना होगा। दूसरो के दृष्टिकोण को अपने दृष्टिकोण में स्थान देना होगा।

विवेकशील तथा प्रगतिशील श्रावक उस नेतृत्व को स्वीकार नहीं करेगा जो 'भेद-नीति' का पोषक हो। जागरूक श्रावक अपने धार्मिक नेता तथा राजनीतिक नेता दोनों के समक्ष अपना स्वतंत्र दृष्टिकोण पेश करने में नहीं हिचकिचायेगा। भगवान् महावीर ने सद्-गृहस्थ श्रावक को 'मुनियों के माता पिता' की संज्ञा दी है, क्योंकि मुनि को उत्तम श्रमण धर्म पालन करने के लिये व अपने जीवन निर्वाह के लिये 'श्रावक' पर निर्भर रहना पड़ता है।

### (iv) केन्द्रीय धर्माचार्य-समिति:—

इस समिति में सभी जैन सम्प्रदायों के महान् आचार्य सम्मिलित

होंगे जो समूचे जैन धर्म में बाधक या सहायक प्रक्रियाओं पर विचार करके जैनों की एकता पर एक सर्वमान्य नीति तैयार करेंगे तथा उस पर अपने सघ में आचरण करवाने के लिये कटिबद्ध होंगे। यह समिति पत्र-व्यवहार द्वारा भी बहुत कुछ निर्णय ले सकती है।

(v) केन्द्रीय श्रावक समिति.—

समस्त भारतवर्ष की या विश्व-भर के जैनो की यह प्रतिनिधि समिति होगी जो समय-समय पर मिल बैठकर जैन धर्म तथा समाज की प्रगति सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करेगी। 'एकता व अहिंसा-धर्म प्रसार इसका लक्ष्य होगा'।

यह समिति केन्द्रीय आचार्य समिति के साथ सहयोग करेगी और विचारों का आदान-प्रदान करेगी।

(vi) सच्चाभारतीय नागरिक:—

सच्चा जैन ही सच्चा नागरिक और सच्चा नागरिक ही सच्चा जैन हो सकता है। हमारी शिक्षा सस्थाएँ व सस्थान अच्छा नागरिक बनाने में तत्पर हो। इस प्रकार हमें अजैन भाइयों से पूरा सहयोग मिल सकता है।

(vii) जैन बालकों में सर्वतोमुखी विकास:—

आज का विद्यार्थी कल का जनक है। स्थानीय सँस्थाएँ तथा उनके मुख्य लोग यदि इस बात में दिलचस्पी ले और बच्चों का ठीक मार्ग-दर्शन करे तो इन्हीं में से ऊँचे दर्जों के सेनानायक, डॉक्टर, इंजीनियर, अध्यापक, वकील, कलाकार, साहित्यकार, अर्थशास्त्री, व्यवसायी, राजनीतिज्ञ तथा बहुभाषा-भाषी विद्वान् निकल सकते हैं।

(viii) स्वाध्याय प्रणाली:—

छोटी बड़ी उम्र के सभी श्रावकों में स्वाध्याय प्रणाली चालू

करने की अत्यन्त आवश्यकता है। जन गृहस्थों को जब अपने धर्म सिद्धान्तों का ही ज्ञान नहीं है तो उनकी उनमें आस्था स्थिर कैसे रह सकती है ? उनकी स्थिति गली के एक कंकर की है जिसे ठोकर मार कर कोई भी व्यक्ति किसी दिशा में फेंक सकता है।

स्वाध्याय प्रणाली को प्रसारित करने के लिये प्रोत्साहन अथवा पुरस्कार आदि का अवलम्बन करना चाहिये।

(ix) विज्ञान में दिलचस्पी—

इस विषय में हमारे बालकों को अधिक से अधिक क्रियाशील होना चाहिये। जैन धर्म वैज्ञानिक ढंग को अपनाता ही है। जैन सिद्धांत में कुछ ऐसे तथ्य भरे पड़े हैं कि यदि उनकी खोज की जाये तो कई चमत्कारिक रहस्य उद्घाटित हो सकते हैं। 'परमाणु' तथा 'आकाश' के बारे में तो जैन धर्म ने विशेष उपयोगी विचार दिये हैं जो आज-कल के वैज्ञानिकों के लिये बड़े काम की वस्तु हैं।

(x) पुनः क्षात्र तेज की प्राप्ति अथवा सेना में प्रवेश:—

हमें अपने क्षात्र तेज को पुनः जागृत करना होगा। जैन वीर सेनापति 'चामुण्ड राय' और 'आभू' की याद ताजा करनी होगी। जैन सम्राट् खारवेल की मोर्चाबंदियों, सैन्य-संचालन, रण-कौशल, कर्तव्यशीलता, प्रजावत्सलता आदि गुणों को अपनाना होगा। प्रत्येक जैन श्रावक को यह स्मरण रखना चाहिए कि वह धर्मनीति को अपनाते हुए भी राजनीति से अलग नहीं रह सकता क्योंकि देश में शान्ति और समृद्धि होने पर ही धर्म की साधना तथा जीवन में सुख शान्ति सम्भव है। उसके बिना समाज का अस्तित्व कायम नहीं रह सकता और अन्य जातियों के मुकाबले में वह निःसहाय, कमजोर, अशक्त माना जायेगा। अगर जैन श्रावक यह समझता है कि धन-बल

का तो संचय किया जाये परन्तु क्षात्रबल और राजनीति बल की उपेक्षा की जाये तो यह नितांत अधूरा व्यक्तित्व होगा ।

देश की राजनीति और सैन्य-बल से संन्यास लेकर हम कैसे जीवित रह सकते हैं ? जो मरना नहीं जानता वह जीना भी नहीं जानता । ऐसे व्यक्ति को जीने कौन देगा ? अगर वह जियेगा भी तो आख-बद-कान-बंद व्यक्ति के समान । भला यह भी कोई जीवन है ?

उठो, खड़े हो जाओ । महावीर की 25वीं निर्वाण शताब्दी में एक करवट बदलो । अपनी सतानों को अधिक से अधिक संख्या में बायु-सेना, जल-सेना, थल-सेना में भर्ती कराओ । मृत्यु केवल सैनिक को ही नहीं दबोचती, अपने समय पर यमराज सभी जीवों को अपने पाश में फासते हैं ।

2500 वीं महावीर निर्वाण जयन्ती पर आप मोह जाल को फेकिये और नौजवान बच्चों को मैदान में आने दीजिये । उन्हें महावीर का वीर सैनिक बनने दीजिये, सिंह को अपना तेज प्राप्त करने दीजिये । 'सुखे-समाधे' और 'सुख-साता' की चाह के स्थान पर बच्चों को मृत्यु से जूझने की शिक्षा दीजिये । बच्चों की घमनियों में जो नया खून दौड़ रहा है और वह कुछ जोखिम के काम करना चाहता है, इसकी उसे अनुमति दीजिये । महावीर की संतान कमजोर क्यों बने ? वीर-शावक तुमुल नाद से जागा है आप उसे प्रोत्साहन दीजिये ।

(xi) अनुभवों वृद्धि पुरुषों का नेतृत्व:—

50 से 70 वर्ष की अवस्था के महाजन ध्यान से सुन लें । अब वे संसार से कितना 'रस' और लेना चाहते हैं ? बहुत हो चुका । आपने आवश्यकता से अधिक इस संसार के सुखों को देख लिया । यह संसार किसी दिन अचानक आपको लूट लेगा, हड़प लेगा । कुछ नेक कमाई कीजिये । आपकी बुद्धि ठीक, शरीर बल कायम, 'संतान आपकी योग्य,



आपका स्थान लेने को तैयार । समाज के प्रति, धर्म के प्रति अपना अमूल्य समय दीजिये, शक्ति दीजिये, बुद्धि दीजिये और युवा पीढ़ी का नेतृत्व कीजिये ।

प्रत्येक नगर में, कस्बे में, गाँव में अगर 10 महानुभाव ऐसे मिल जायें तो स्वतः ही

### ‘महावीर हाई कमाण्ड’

तैयार हो जायेगा । समाज और धर्म को आपका नेतृत्व मिल जायेगा । धर्म लगड़ा है उसे लाठी का सहारा चाहिए । आप ही उसे गतिमान करेगे । वह आपकी रक्षा करेगा ।

25वीं महावीर निर्वाण शताब्दी में आप ‘वीर सेना’ का सिपाही बनिये या नायक बनिये यह आपकी इच्छा और शक्ति पर निर्भर है ।

मृत्युपर्यंत गृहस्थ धर्म को भोगते रहने की लालसा तीव्र होना कोई बड़प्पन की बात नहीं है । क्या हर्ज है अगर पुरानी ‘स्वस्थ परम्परा’ पुनः चालू की जाये । 50-55 की आयु के पश्चात् त्याग की प्रथा को पुनर्जीवित किया जाये । आप इस सुनहरी अवसर पर दृढ़ सकल्प कीजिये । समाज और धर्म आपके नेतृत्व की अपेक्षा करता है ।

### (xii) जन सम्पर्क:—

भारत केवल शहरों में ही नहीं बसता, उसकी 82% जनसंख्या लगभग साढ़े सात लाख गाँवों में निवास करती है । जैनो का कार्य-क्षेत्र मुख्यतया नगरों तक सीमित रहा है । वहाँ कुछ कर्मठ लोग समारोहों, गोष्ठियों तथा साहित्य निर्माण द्वारा अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं । हम ऐसे कर्मठ लोगो के बड़े कृतज्ञ हैं जो इतना भी कर पाते हैं ।

इस 25 वीं शताब्दी समारोह के अवसर तक यदि हम अपने अपने नगर या स्थान के प्रत्येक व्यक्ति से सम्पर्क कायम करके महावीर की कल्याणमयी बाणी उन तक पहुँचाते हैं तो यह भी एक सराहनीय सेवा होगी। परन्तु महावीर तो सारे भारत और विश्व के लिए हैं। हमने उन्हें सीमित क्यों कर रखा है ?

जन-सम्पर्क की एक योजना बनाई जाये। प्रत्येक जिला, नगर, तहसील अपने आसपास के गावों की एक सूची तैयार करे। जहाँ-जहाँ भी यातायात की मुविधा प्राप्त हो वहाँ 5-7 कर्मठ अनुभवी व्यक्तियों के प्रतिनिधि मण्डल भेजे जाये। मण्डली में गायक, उपदेशक, कवि, कथाकार, चिकित्सक तथा सहायता (Relief) बाँटने वाले व्यक्ति होने चाहिये। कोई कटाक्ष की बात न हो, कोई धर्म परिवर्तन का उद्देश्य न हो। केवल मानव धर्म, अहिंसा धर्म, प्रेम-धर्म, समानता-धर्म का प्रचार किया जाये। उस प्रदेश के लोगों की कपड़े से, दवाई से, रोजगार से तथा ज्ञानदान से सहायता की जाये। उन्हें बताया जाये कि राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, नानक, गांधी भारत के ही रत्न थे। वे आपको उन्नत बनाना चाहते थे।

इन सब सेवाओं के लिये सरकारी सहायता की उपेक्षा न की जाये। आखिर सरकार भी तो हम ही लोग हैं। हमारे आंदोलन का उद्देश्य होना चाहिये अज्ञानता, दुःख-दर्द, पीड़ा, बेकारी को दूर करना तथा महानुभूति, समानता और मैत्री का वातावरण उत्पन्न करना एवं बड़ों का आदर और छोटों से प्रेम करना।

#### (xii) केन्द्रीय दान प्रणाली:—

25वीं शताब्दी सम्बन्धी स्थानीय और केन्द्रीय अहिंसा आंदोलन को चलाने के लिए धन की आवश्यकता पड़ेगी। जन-जन की सहायता से धन एकत्रित किया जाये। सभी छोटे बड़े इस महान् यज्ञ में भागीदार बने। योजना बड़ी सरल सहल, परन्तु प्रभावकारी है:—

मान लो जैनो की सख्या है कम से कम 50 लाख । इसमें 25 लाख ऐसे व्यक्ति होंगे जो प्रतिदिन 2½पैसे आसानी से निकाल सकते हैं । महीने के अंत में प्रति व्यक्ति 50 पैसे से 100 पैसे दे । वर्ष-भर के पश्चात् यह राशि 25 लाख वयस्क आदमियों से इकट्ठी की हुई '3 करोड़' तक जा पहुँचेगी । इसमें सभी का हिस्सा होगा, सभी की सम्भावना होगी । डेढ़ करोड़ रुपया तो स्थानीय समितियाँ जरूरी व्यय के लिये अपने पास रख ले और शेष 1½ करोड़ की एकत्रित राशि भारत केन्द्रीय समिति को दे दी जाये । कितना बड़ा काम हो सकता है यदि ईमानदारी में किया जाये ।

इस योजना को प्रादेशिक रूप में पहले मास में दिल्ली में सफल बनाया जाये और शेष प्राप्ति के लिये आदर्श उपस्थित किया जाये । इस योजना की कार्यान्विति के लिये अनुशासनप्रिय, कर्मठ, विशेष रूप से ईमानदार आदमी चाहिये

#### (xiv) जैन मिशन की स्थापना:—

जैन धर्म को अन्तर्राष्ट्रीय रूप देने के लिये ससार के देशों की राजधानियों तथा मुख्य नगरों में जैन मिशन (Jain Mission) की स्थापना की जाये । इस दिशा में योजनाबद्ध भिन्न-भिन्न देशों की सरकारों से पत्र-व्यवहार करके तथा संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) के माध्यम से प्रत्येक राजधानी तथा नगर में अनुभवी, सेवाभावी, त्यागोन्मुख जैन तथा जैनोत्तर विद्वानों के सहयोग से 'जैन मिशन' की स्थापना की जाये । इस सम्बन्ध में स्थानीय सर्वजन उपकारी (Philanthropists) लोगों से जो भी सहायता मिले, ग्रहण की जाये । पहला कदम उठाने पर दूसरा कदम स्वतः ही आगे निकल आयेगा । समस्या केवल योजनाबद्ध तरीके से कार्य आरम्भ करने की है ।

उपर्युक्त प्रत्यक्ष तथा परोक्ष साधनों द्वारा तथा दृढ सकल्प करके स्त्री-समाज, युवा पीढ़ी, अनुभवी लोगों, समाजसेवी तथा विद्वानों एवं प्रेस व टेलिविजन द्वारा जैन धर्म की ह्लास-गाथा को प्रगति की सुन्दर वाटिका में परिवर्तित करने का भगीरथ प्रयास किया जाये ताकि ससार में सर्व-कल्याणकारी अहिंसा-शासन की स्थापना करके 'रामराज्य' को साकार किया जाये ।

यह जैन धर्म की वास्तविक गतिशीलता होगी । ससार को जैन धर्म की यह अमूल्य देन होगी ।



(क)

ससार मे साहित्य का निर्माण क्या हुआ मानों अतीत से उसका जुड़ा हुआ सम्बन्ध स्पष्ट नज़र आने लगा । साहित्य ने मनुष्य समाज की महान् कलाकृतियों तथा उपलब्धियों को लिपि-बद्ध करके अगली पीढ़ी के लिये सुरक्षित रखा है । साहित्य ने अदृश्य विचारों को मूर्त रूप देकर सम्यता व सस्कृति की बेल को पल्लवित तथा पुष्पित रखने के लिये कितनी अविस्मरणीय सेवा की है ।

जिस देश या जाति का कोई साहित्य नहीं है उसकी दशा 'पाषाण-युगीन व्यक्ति' की सी होती है । जिस देश का साहित्य समृद्ध नहीं होता, वह पिछड़ा हुआ, विचारहीन और असम्य देश माना जाता है ।

आपका मस्तक गर्व से उन्नत हो जायेगा और छाती खुशी से फूल उठेगी जब आपको यह मालूम होगा कि—

‘जैनो ने भारतीय साहित्य को अमूल्य मौलिक रत्न दिये हैं’ । साहित्य की कोई ऐसी शाखा नहीं जिसे उन्होंने चार चाँद न लगाये हो ।

भारत की प्राचीन भाषाओं सस्कृत, प्राकृत तथा प्रादेशिक भाषाओं जैसे-मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड तथा अन्य द्रवेडियन भाषाओं में विपुल साहित्य सृजन किया है । जैन धर्म मे प्रकाण्ड जैनाचार्य हो गये हैं जो प्रबल तार्किक, वैयाकरण, कवि और दार्शनिक थे । उन्होंने जैन धर्म के साथ साथ भारतीय साहित्य के अन्य क्षेत्रों में भी अपनी लेखनी के जौहर दिखाये हैं ।

दर्शन, न्याय, व्याकरण, कोश, काव्य, छंद, अलंकार, सर्गात-कथा, शिल्प, मन्त्र-तन्त्र, वास्तुकला, चित्रकला, वैद्यक, गणित, ज्योतिष, शकुन, निमित्त, स्वप्न, सामुद्रिक, रमल, लक्षण, अर्थ, रत्नशास्त्र, मुद्राशास्त्र, नीति शास्त्र, धातु विज्ञान, प्राणि विज्ञान आदि विषयो पर महत्वपूर्ण ग्रंथों का निर्माण किया गया है।

सर्वज्ञ और सर्वदर्शी भगवान् महावीर ने अपने आपको और समूचे लोक को देखा। उन्होंने अपने प्रवचनों में बंध और बंध-हेतु, मोक्ष और मोक्ष-हेतु का स्वरूप बताया। भगवान् की वाणी 'आगम' कहलाई। उनके प्रधान शिष्य गौतम (इन्द्रभूति) आदि ग्यारह गणधरो ने उसे सूत्ररूप में गूँथा। भगवान् के प्रकीर्ण उपदेश को 'अर्थागम' और उनके आधार पर की गई सूत्र रचना को 'सूत्रागम' कहा गया। वे आचार्यों के लिये 'धर्म निधि' बन गये, इसलिये उनका नाम 'गणिपिटक' हुआ। इसके बारह भाग हुये जिसे 'द्वादशांगी' नाम से पुकारा गया।

'चौदह पूर्व' के ज्ञान का परिमाण बहुत विशाल है। वे 'पूर्व श्रुत' या शब्द ज्ञान के समस्त विषयों के 'अक्षय-कोष' होते हैं। इनके अध्येता श्रुतकेवली कहलाते हैं।

'चौदह पूर्व' का ज्ञान-विच्छेद हो चुका है। इन का पूर्ण-विच्छेद ईसा की 5वीं शताब्दी तक हो चुका था। महावीर के ग्यारह गणधरों के अतिरिक्त अन्य ज्ञानवान् आचार्यों तथा चित्तकों ने वीर वाणी की छाया में जीवनोपयोगी, मोक्ष-मार्गी रचनाएँ कीं जिनकी प्रतिष्ठा द्वादशांगी के पश्चात्-वर्ती की गई।

महावीर निर्वाण से कई शताब्दी पीछे शास्त्रज्ञान अथवा श्रुत-ज्ञान 'गुरुमुख' से प्राप्त करने की प्रथा सर्वोत्तम मानी जाती रही और कई कारणों से उसे लिपिबद्ध करने की उपेक्षा की जाती रही।

राजनैतिक अस्थिरता तथा लम्बे दुर्मिक्षों के कारण श्रुत ज्ञान क्षीण होता गया। विकीर्ण महावीर-वाणी को एकत्रित करने के लिए निम्नलिखित 'तीन वाचनाएँ' की गईं जिनमें विद्वान् मुनि सम्मिलित हुए और जो जिसको स्मरण या कण्ठ था, पेश किया।

1. पाटलीपुत्र में वीर निर्वाण से 160 वर्ष पश्चात्
- 2 (क) मथुरा में स्कन्दिल की अध्यक्षता में वीर निर्वाण से 825 वर्ष पश्चात्

(ख) वल्लभी में नागार्जुन सूरी की अध्यक्षता में

3. वल्लभी में देवद्विगणी क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में वीर-निर्वाण के 980/983 वर्ष पश्चात्

आचार्य देवद्विगणी ने अत्यन्त परिश्रम से प्राकृत में जो कुछ संकलन किया वह 'शास्त्र' रूप में निम्न नामों से प्रसिद्ध हुआ—

क्रमांक नाम शास्त्र	शास्त्र सख्या
1 अग	12 (अंतिम 12वां अग)
2 उपाग	12 विच्छेद हो चुका है)
3 मूल सूत्र	4
4 छेद सूत्र	6
5 घूलिका सूत्र	2
6 प्रकीर्णक	12

आगमों का वर्तमान संस्करण 'देवद्विगणी' का है। अगों के कर्त्ता गणधर हैं। अग-बाह्य-श्रुत के कर्त्ता स्थविर हैं। उन सबका संकलन और सम्पादन करने वाले देवद्विगणी हैं, अतः वह आगमों के वर्तमान रूप के कर्त्ता भी माने जाते हैं।

031441

## जैन धर्म<sup>१</sup> शास्त्र—दिगम्बर जैन समाज की मान्यता

दिगम्बर [जैन समाज की धारणा धर्म-शास्त्रों के बारे में इस प्रकार है:—

‘दृष्टिवाद अंग’ के ‘पूर्वगत’ ग्रंथ का कुछ अंश ईस्वी प्रारम्भिक शताब्दी में श्री ‘धरसेन’ आचार्य को ज्ञात था। उन्होंने देखा कि यदि वह शेष अंश भी लिपिबद्ध नहीं किया गया तो भगवान् महावीर की वाणी का सर्वथा लोप हो जायेगा। फलतः उन्होंने ‘पुष्प दंत’ और ‘भूतबलि’ जैसे मेघावी मुनियों को बुलाकर गिरिनार पर्वत की चद्र-गुफा में उसे लिपिबद्ध कर दिया। उन दोनों विद्वान् मुनियों ने उस लिपिबद्ध श्रुतज्ञान को ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन सर्वसंध के समक्ष उपस्थित किया था। वह पवित्र दिन ‘श्रुतपंचमी’ के नाम से प्रसिद्ध है और साहित्योद्धार का प्रेरक कारण बन रहा है।

बारहवां अंग दृष्टिवाद विच्छेद हो चुका है जिसके पाँच भाग  
1. परिक्रम 2. सूत्र 3. प्रथमानुयोग 4. पूर्वगत 5. चूलिका थे।

‘पूर्वगत’ ही चौदह-पूर्व के शब्द ज्ञान से विख्यात था। ‘पूर्वों’ में सारा श्रुतज्ञान समा जाता है किन्तु साधारण बुद्धि वाले उसे पढ़ नहीं सकते। उनके लिये ‘द्वादशांगी’ की रचना की गई।

भूतबलि और पुष्पदंत ने आचार्य धरसेन से श्रुताभ्यास करने के पश्चात् प्राकृत भाषा में, गद्य में जिस अद्वितीय ग्रंथ की रचना की



उसका पुण्य नाम 'षट्खण्डागम' है जो निम्न नामों से भी विख्यात है:—

‘षट्खण्डागम’

1. कर्म प्राभृत या कर्म पाहुड
2. महाकर्म प्राभृत
3. आगम सिद्धांत
4. खण्ड सिद्धांत
5. षट्खण्ड सिद्धांत

महामुनि भूत बलि और पुष्प दंत वीर निर्वाण की छटी—सप्तमी शताब्दी के मध्य में रहे। इनके समकालीन 'गुणधर' नाम के आचार्य हुए। उन्होंने 233 गाथाओं में 'कसायपाहुड' या 'कषाय प्राभृत' ग्रंथ की रचना की जिस पर 'यति वृषभ' आचार्य ने 6000 श्लोक प्रमाण 'वृत्तिसूत्र' प्राकृत में रचे।

उपर्युक्त दोनों महान् ग्रंथों पर अनेक टीकाएँ रची गईं जो उपलब्ध नहीं हैं। इनके अंतिम टीकाकार 'वीरसेन' आचार्य हुए जो बड़े समर्थ विद्वान् थे। उन्होंने षट्खण्डागम पर अपनी सुप्रसिद्ध टीका 'धवला' शक सम्वत् 738 में पूरी की जिसकी श्लोक संख्या 72000 है।

दूसरे महान् ग्रंथ 'कसायपाहुड' पर भी उन्होंने टीका लिखनी आरम्भ की। उसके यह 20000 श्लोक प्रमाण ही लिख सके कि स्वर्गवासी हुए। इनके कार्य को उनके सुयोग्य शिष्य 'जिनसेन' आचार्य ने 40000 श्लोक और अधिक लिखकर इस गुरुतर कार्य की पूर्ति शक सम्वत् 759 में की। इस टीका का नाम 'जय धवला' है जिसकी कुल श्लोक संख्या 60000 है। उपर्युक्त दोनों ग्रंथों की टीकाओं की रचना संस्कृत और प्राकृत के सम्मिश्रण से की गई है। बहु-भाग इस का प्राकृत में है।

आगम ग्रन्थों से सम्बन्धित अनेक उत्तरकालीन रचनाएँ की गईं जिनका उद्देश्य आगमों के विषय को संक्षेप या विस्तार से समझाना था। ऐसी रचनाएँ चार प्रकार की हैं:—

1. निर्युक्ति (शिण्जुति')
2. भाष्य ('भास')
3. चूर्णि ('चुण्णि')
4. टीका या वृत्ति

1. 'निर्युक्तियाँ' अपनी भाषा, शैली व विषय की दृष्टि से सब प्राचीन हैं। ये प्राकृत पद्यों में लिखी गई हैं और संक्षेप में विषय का प्रतिपादन करती हैं। इनमें प्रसंगानुसार विविध कथाओं व दृष्टान्तों के संकेत मिलते हैं। इस समय आचाराग आदि 9 आगमों की निर्युक्तियाँ मिलती हैं और वे 'भद्रबाहु' (द्वितीय) कृत मानी जाती हैं।

2. 'भाष्य' भी प्राकृत गाथाओं में रचित संक्षिप्त प्रकरण हैं। यह 'कल्प' आदि 'आठ आगमों' पर लिखे गये हैं। 'संधदास गणि' व 'जिनभद्र' ने कई आगमों पर भाष्य लिखे हैं।

3. चूर्णियाँ:—भाषा व रचना शैली की दृष्टि से अपनी विशेषता रखती हैं। वे प्राकृत-संस्कृत मिश्रित गद्य में लिखी गई हैं। लगभग 18 आगमों पर 'जिनदास गणि महत्तर' ने ईसा की सातवीं शताब्दी में चूर्णियाँ लिखीं।

4. वृत्तियाँ संस्कृत में विस्तार से लिखी गई हैं। 'हरिभद्रसूरी',

‘शीलांकसूरि’, ‘शांति चंद्र’, ‘अमयदेव सूरि’, मलधारी हेमचंद्र’, ‘मलय-गिरि’, ‘द्रोणाचार्य’, ‘क्षेमकीर्ति’ अनेक वृत्तियों के कर्ता थे । अमयदेव सूरि ने दो आगमों को छोड़ शेष सब पर अत्यंत उपयोगी वृत्तियाँ लिखी । शोलांक सूरि ने शेष दो आगमों—आचारांग व सूत्रकृतांग पर टीकाएँ (वृत्तियाँ) लिखी ।

### —जैन आचार्य—

जैनाचार्यों तथा उनके प्रबुद्ध, अपरिग्रही, सेवाभावी, मुनिवर्ग ने भारतीय समाज के समक्ष अपनी ऊँची आचार-विचार प्रणाली उपस्थित की तथा भ्रमण करते हुए जन-जन के समीप जाकर उसे बोध दिया । अन्य समय में, विशेषकर चौमासे में वे एक स्थान में स्थित रहकर, एकाग्रचित्त होकर तपस्या करते थे, शास्त्रों का मंथन करते थे और शास्त्रीय आधार पर अपनी अनुभूतियों को लिपिबद्ध करते थे । उनकी लेखनी ने नाना प्रकार के साहित्य का सृजन किया । सम्य समाज के लिए उन्होंने ऐसा कोई विषय नहीं छोड़ा जिस पर उन्होंने अपने उच्च विचार व्यक्त न किये हों । ऐसे त्यागी, परोपकारी तथा आत्मार्थी मुनियों का समाज में बड़ा आदर था । उनकी कुछेक कृतियों का वर्णन नीचे दिया जाता है ।

#### (1) आचार्य कुंदकुंदः—

‘प्राकृत पाहुडो’ की रचना की परम्परा में आचार्य कुंदकुंद का नाम सुविख्यात है । जैनो की दिगम्बर सम्प्रदाय में उन्हें जो स्थान प्राप्त है, वह दूसरे किसी ग्रन्थकार को प्राप्त नहीं हो सका । उनका शुभ नाम एक मंगल पद में भगवान् महावीर और गौतम गणधर के पश्चात् ही तीसरे स्थान पर आता है ।

उन्होंने कोई 84 पाहुडो की रचना की, किन्तु वर्तमान में उनकी निम्न रचनाये प्रसिद्ध हैः—

1. समयसार 2. प्रवचनसार 3. पञ्चास्तिकाय 4. नियमसार
5. रयणसार 6. देश-भक्ति 7. अष्ट पाहुड 8. बारस अणु-वेकखा ।

‘अमृतचंद सूरि’ व ‘जयसेन’ ने उपर्युक्त में से कतिपय पर टीकाएँ लिखी हैं। ‘बालचंद्रदेव’ ने 12वीं—13वीं शताब्दी में उन पर ‘कन्नड’ भाषा में टीकाएँ लिखी हैं।

आचार्य कुंदकुंद ने तमिल भाषा में ‘कुरल या कुहल’ नामक एक महाकाव्य रचा और ‘थिरुवल्लुवर’ नामक अपने शिष्य के हाथ विद्वत् समाज में पेश करने के लिये भेज दिया। विद्वत्मण्डल ने उसे खूब पसंद किया। ‘कुरल’ तमिल साहित्य का ‘ग्रंथ रत्न,’ बन गया, ‘कुरुल’ नीति का एक अपूर्व ग्रन्थ है और तमिल देशमें वह ‘पाचवाँ वेद’ विख्यात है। इसकी रचना ऐसी उदार दृष्टि से की गई है कि प्रत्येक धर्म का अनुयायी उसे अपना मान्य ग्रन्थ स्वीकार करने में गर्व महसूस करता है।

## (2) बट्टकेरः—

बट्टकेर प्रथम शताब्दी ई० पू० रहे। इनके द्वारा लिखित ‘भूला-चार’ जैन मुनियों के आचार के सम्बन्ध में एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। यह दिगम्बरो का आचाराग शास्त्र है।

## (3) आचार्य कुमार या कार्तिकेयः—

‘कार्तिकेयानुप्रेक्षा’ इन आचार्य द्वारा रचित प्राकृत भाषा में एक उत्तम ग्रन्थ है। इसमें बारह अध्याय हैं जो मुनि तथा श्रातक के लिये मोक्ष प्राप्ति के सुन्दर निबन्ध हैं।

## उमास्वाति या उमास्वामीः—

(3) गृद्धपिच्छाचार्य उमास्वाति या उमास्वामि ‘तत्त्वार्थाधिगम’ (तत्त्वार्थ) सूत्र के कर्त्ता थे। यह सस्कृत में प्रथम जैन ग्रन्थ है जिसे

जैनो की सभी सम्प्रदायों मान्यता देती है। इसे जैनो की 'बाइबिल' कहते हैं। छोटे मोटे लगभग 356 सूत्रों द्वारा, दश अध्यायों में, जैन धर्म के मूलभूत सात तत्त्वों का विधिवत् निरूपण ग्रन्थ में आ गया है, जिससे इस ग्रन्थ को समस्त जैन सिद्धांत की कुंजी कहा जा सकता है। इसी कारण लोक-प्रियता और सुविस्तृत प्रचार की दृष्टि से यह ग्रन्थ जैन साहित्य में अद्वितीय है। इसका मुख्य टीकाएँ इस प्रकार हैं:—

1. सर्वार्थ सिद्धि — देवनादिपूज्याद कृत
2. तत्त्वार्थ राजवार्तिक — अकलक कृत
3. तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक — विद्यानदि ,,
4. तत्त्वार्थ भाष्य वृत्ति — स्वोपज्ञ
5. तत्त्वार्थ भाष्य वृत्ति — सिद्धसेन गणी ,,
6. " " " — हरिभद्र ,,
7. तत्त्वार्थाधिगम भाष्य पर व्याख्या — मलयगिरि कृत
8. तत्त्वार्थ-टिप्पण — चिरंतन मुनि कृत
9. तत्त्वार्थ पर टबा टिप्पणी (गुजराती)—गणी यशोविजय कृत
10. तत्त्वार्थ वृत्ति — श्रुतसागर सूरि कृत
11. सुखबोध टीका (संस्कृत) भास्कर नदि कृत
12. साधारण संस्कृत व्याख्या — 1. विबुधसेन, 2. योगेश्वर  
3. योगीन्द्र देव 4. लक्ष्मीदेव  
5. अभयनदि सूरि कृत
13. (कर्णाटक) भाषा में अनेक टीकाएँ रची गईं  
(हिन्दी) भाषा में — ,,
14. (अंग्रेजी) भाषा में — जे० एल० जैनी कृत
15. (जर्मन) भाषा में — डा० हर्मन जेकोबी कृत

## (4) पादलिप्त सूरी व विमल सूरि:—

इन्होंने प्राकृत में अद्भुत लेखन कार्य किया। पादलिप्त सूरि ने 'तरंगवती' नाम का एक धार्मिक उपन्यास लिखा। इसका उल्लेख जिन-भद्र के 'विशेषावश्यक भाष्य' में, दाक्षिण्यचिह्न की 'कुवलयमाला' में तथा धनपाल द्वारा लिखित 'तिलकमजरी' में आया है।

विमलसूरि ने 'पद्मचरित' लिखा जिसमें भगवान् राम की बीर गाथा का वर्णन है। इसके 118 आख्यान (chapter) हैं। राम का ही नाम 'पद्म' है।

## (5) शिवशर्मा व चद्र ऋषि:—

इनके द्वारा क्रमशः 'कर्म प्रकृति' और 'पंच सग्रह' कर्मवाद के ऊपर जैन के यह दो उत्तम ग्रन्थ लिखे गये हैं। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में इनका निर्माण किया गया। आचार्य मलयगिरि ने इन दोनों ग्रन्थों पर अपने भाष्य लिखे हैं।

## (6) सिद्धसेन:—

सिद्धसेन दिवाकर एक उच्चकोटि के दार्शनिक (logician) थे। यह उमास्वाति की तरह सर्वप्रिय थे। आचार्य जिनसेन ने आदर के साथ इनका स्मरण किया है। इनकी सूक्तियों को भगवान् ऋषभदेव की सूक्तियों के समकक्ष बताया है। सिद्धसेन को प्रतिवादिरूप हाथियों के समूह के लिये विकल्परूप नखोयुक्त 'सिंह' बताया है।

इनका 'सन्मति तर्क' ग्रन्थ अति प्रसिद्ध और बहुमान्य है, जो प्राकृत गाथाओं में निबद्ध है। इनके अन्य ग्रंथ हैं—'न्यायावतार' तथा द्वात्रिंशकाएं जो संस्कृत में हैं। इनके सभी ग्रन्थ गहन दार्शनिक चर्चाओं से परिपूर्ण हैं।

## (9) मल्लवादी:—

यह प्रबल तार्किक थे। आचार्य हेमचंद्र ने अपने व्याकरण में लिखा है कि सब तार्किक मल्लवादी से पीछे हैं। 'द्वादशारण्यचक्र' इन द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रंथ है जो उपलब्ध नहीं है, किन्तु उस पर सिंह क्षमाश्रमण द्वारा लिखित टीका अवश्य मिलती है।

मल्लवादी ने सिद्धसेन दिवाकर कृत 'सन्मति तर्क' पर आलोचना (Commentary) लिखी है जो अप्राप्य है। आचार्य हरिभद्र ने अपने 'अनेकातजयपताका' ग्रंथ में इनका 'वादिमुख्य' नाम से उल्लेख किया है। मल्लवादी विक्रम की 18वीं शती से पूर्व हुए।

## (10) अकलकः—

अहं जैन न्याय के प्रतिष्ठाता थे। यह प्रकाण्ड पण्डित, धुरधर शास्त्रार्थी और उत्कृष्ट विचारक थे। जैन न्याय को इन्होंने जो रूप दिया उसे उत्तरकालीन जैन ग्रंथकारों ने अपनाया। स्वामी समत-भद्र के यह सुयोग्य उत्तराधिकारी थे। उनके 'आप्तमीमांसा' ग्रंथ पर 'अष्टशती' नामक भाष्य की रचना की। इनकी रचनाएँ दुरुह और गम्भीर हैं। इनके निम्नलिखित ग्रंथ प्रकाश में आ चुके हैं:—

1. अष्टशती 2. लघीयस्त्रय 3. प्रमाण संग्रह 4. न्याय विनिश्चय 5. सिद्धि विनिश्चय 6. तत्त्वार्थ राजवार्त्तिक

## (11) हरिभद्र सूरी:—

आप आठवीं शती ई० में संस्कृत तथा प्राकृत में अनेक ग्रंथों के कर्त्ता हुए। इन्होंने गद्य एवं पद्य में खूब लिखा। भारतीय दर्शन में 'षड्दर्शन समुच्चय' नामक इनका ग्रंथ एक विशद आलोचना है। दर्शन विषय पर इनके ग्रंथ रचित शास्त्र निम्नलिखित हैं:—

1. अनेकात प्रवेश 2. अनेकात जयपताका 3. ललित बिस्तार 4. शास्त्रवार्ता समुच्चय 5. द्विजवदन

चपेटा 6. परलोक सिद्धि 7. सर्वज्ञान सिद्धि

8. धर्मसंग्रहणी 9. लोक तत्त्व निर्णय

योग विद्या पर हरिमद्रसूरी के ग्रन्थ ये हैं:—

1. योग दृष्टि समुच्चय 2. योग बिन्दु 3. योग शतक
4. षोडशक

कथा-वस्तु पर इनके रचित ग्रन्थ:—

1. समरादित्य कथा (समराइच्च कहा)
2. घूर्ताख्यान

आचार शास्त्रो मे 'धर्म बिन्दु' इनका ख्यातिप्राप्त ग्रन्थ है। यह सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे। भिन्न विषयो पर इनके लेख तथा आलोचनाएं सर्वमान्य हैं।

(12) विद्यानदि:—

ईसा की नवमी शताब्दी में विद्यानदि अपने समय के समर्थ विद्वान् थे। इन्होंने अकलकदेव की 'अष्टशती' पर 'अष्टसहस्री' नाम का महान् ग्रन्थ लिखा। अति कठिन होने के कारण उसे कष्ट सहस्री भी कहा जाता है। विद्यानदि सभी भारतीय दर्शनों (हिन्दु, वैदिक, जैन, बौद्ध) के पारगामी विद्वान् थे। उन्होंने तत्त्वार्थ सूत्र पर 'तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक' एक सुन्दर भाष्य लिखा।

दर्शनशास्त्र पर उनके मौलिक ग्रन्थ निम्न हैं:—

1. आप्त परीक्षा 2. प्रमाण परीक्षा 3. पत्र परीक्षा
4. सत्यशासन परीक्षा 5. विद्यानद महोदय (अप्राप्य)

स्वामी समतभद्र के युक्त्यनुशासन पर 'युक्त्यनुशासनालंकार' इन की एक महत्वपूर्ण भाष्य रचना है।

अपने 'श्रीपुरपाश्वर्नाथ स्तोत्र' की रचना की 'पंचप्रकरण के कर्ता' आपको ही माना जाता है।

आपने अपनी समस्त कृतियाँ संस्कृत में लिखी हैं,



# 14(क) जैन व्याकरण

## (1) पुराण चरित :—

जिनमें पुराण पुरुषो का चरित्र वर्णन किया गया हो उसे पुराण कहते हैं। पुराण साहित्य में “महापुराण” “पद्मचरित”, “हरिवंश-चरित” आदि ग्रंथों का नाम उल्लेखनीय है।

महापुराण (नवी शताब्दी ई०) जैन पुराणों में सबसे प्राचीन है। जैन पुराणों का मूल प्रतिपाद्य विषय 63 शलाका पुरुषों के चरित्र है। इनमें 14 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव और 9 प्रति-वासुदेव हैं। महापुराण रचयिता जिनसेन और गुणभद्र हैं। महापुराण के दो भाग हैं—आदिपुराण और उत्तर पुराण। आदिपुराण के 47 अध्याय हैं जिनमें से 42 अध्याय जिनसेन द्वारा तथा शेष 5 गुणभद्र द्वारा रचित किये गये। उत्तर पुराण में 30 अध्याय हैं जो समूचे गुणभद्र द्वारा लिखे गये।

महापुराण संस्कृत में एक वीर गाथा (Epic poem) है।

पद्मचरित व हरिवंश पुराण जैनो की रामायण व पञ्चाभारत हैं। हरिवंश पुराण ‘जिनसेन’ द्वारा रचा गया। यह जिनसेन महा-पुराण के जिनसेन से भिन्न हैं।

इनके सिवा चरित ग्रंथों का जैन साहित्य में मण्डार मरा पड़ा है सकलकीर्ति आदि आचार्यों ने अपने चरित ग्रंथ रचे हैं।

आचार्य जटा सिंह नदिका वरांग चरित एक सुन्दर पौराणिक

काव्य है। अन्य उच्चकोटि के संस्कृत साहित्य काव्य निम्न हैं।

1. चंद्र प्रभ चरित-वीर नदिकृत
2. धर्म शर्मभ्युदय-हरिचन्द्र कृत
3. द्विसप्तान—घनजय कृत
4. नेमि निर्वाण—वाग्भट्ट कृत
5. महापुराण—मल्लिषेण कृत 1047 ई.

पुराण व चरित (अपभ्रंश भाषा में) :—

अपभ्रंश भाषा में तो जैन कवियों ने खूब रचनाएं की हैं। इस भाषा का साहित्य जैन भण्डारों में भरा पड़ा है। अपभ्रंश बहुत समय तक यहाँ की लोक भाषा रही है और उसका साहित्य भी बहुत लोकप्रिय रहा है। पिछले कुछ दशकों से इस भाषा की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ है। अब तो वर्तमान प्राचीन भाषाओं की जननी होने के कारण भाषाशास्त्रियों और विभिन्न भाषाओं का इतिहास लिखने वालों के लिए अपभ्रंश का अध्ययन आवश्यक हो गया है।

पुष्पदत्त अपभ्रंश के महान् कवि थे। इनका “त्रिषष्टि महापुरुष गुणालकार” एक अपूर्व ग्रंथ है। पुष्पदत्त ने महाकवि स्वयम्भू का स्मरण किया है।

स्वयम्भू कनकामर, रङ्गु आदि अनेक कवियों ने अपभ्रंश भाषा के साहित्य को समृद्ध बनाने के लिये कोई कोर कसर उठा नहीं रखी।

पुष्पदत्त ने यशोधर चरित और नागकुमार चरित भी लिखे हैं।

### (ii) कथा साहित्य

जैनो द्वारा निर्मित कथा साहित्य भी विशाल है। आचार्य हरिषेण का कथाकोष प्राचीन ई. (932) है। ‘आराधना कथा कोष’ पुण्याश्रव

कथा कोष' आदि कई कथाकोष हैं जिनके द्वारा धर्माचरण का शुभ फल और अधर्माचरण का अशुभ फल दिखलाया गया है ।

‘चम्पू काव्य’ भी जैन साहित्य में बहुत है । सोमदेव का ‘यशस्तिलक चम्पू’ हरिचन्द्र का ‘जीवन्धर चम्पू’ और अहंद् दास का ‘पुरु देव चम्पू’ उत्कृष्ट चम्पू काव्य है ।

गद्यग्रन्थों में वादीभ सिंह की गद्यचिन्तामणि उल्लेखनीय है ।

### (iii) व्याकरण सस्कृत

व्याकरण से ज्ञान मूल रूप बनता है । वैयाकरणों ने व्याकरण के विस्तार और दुष्करता का ध्यान दिलाते हुए व्याकरण का अध्ययन करने की प्रेरणा इस प्रकार दी है:—

व्याकरण शास्त्र का अत नही है । आयु बहुत थोड़ी है और विघ्नो से भरपूर है । इसलिए जैसे हम, पानी मिश्रित दूध में से, सिर्फ दूध ही ग्रहण करता है, उसी प्रकार निरर्थक विस्तार को छोड़ कर सार रूप व्याकरण को ग्रहण करना चाहिए ।

सिद्ध सेन गरिण ने कहा है कि पूर्वों में जो शब्दप्रामृत है, उसमें से व्याकरण का उद्भव हुआ है ।

### जैनेन्द्र व्याकरण (पञ्चाध्यायी)

जैनाचार्य देवनंदि द्वारा रचित जैनेन्द्र व्याकरण मौलिक व्याकरणों में ऊँचा स्थान रखता है । इसमें पाँच अध्याय होने से इसे पञ्चाध्यायी भी कहते हैं । इसमें प्रकरण, विभाग आदि नहीं हैं । पाणिनि की तरह विधान क्रम को लक्ष्य करके सूत्र रचना की गई है । इस व्याकरण

पर समय-समय पर एक दर्जन से अधिक वृत्तियाँ लिखी गई हैं जो प्राप्य हैं ।

### शाकटायन व्याकरण

पाणिनि ने जिन शाकटायन नामक वैयाकरणाचार्य का उल्लेख किया है वह पाणिनि से पूर्व हुए थे, परन्तु जिनका शाकटायन व्याकरण आज उपलब्ध है उनका वास्तविक नाम तो है पालकीर्ति और उनके व्याकरण का नाम है 'शब्दानुशासन' पाणिनि द्वारा बताये गये इस प्राचीन शाकटायन आचार्य की तरह पालकीर्ति प्रसिद्ध वैयाकरण होने से शाकटायन के समकक्ष हुए ।

राजा अमोघवर्ष के राज्य काल (वि. स. 871) में पालकीर्ति आपनीय संध के अग्रणी आचार्य थे ।

यक्षवर्मा ने शाकटायन व्याकरण की चिंतामणि टीका में इस व्याकरण की विशेषता बताते हुए कहा है :—

इष्टिया पढने की जरूरत नहीं । सूत्रों से अलग वक्तव्य कुछ नहीं है । 'उपसंख्यानो' की जरूरत नहीं है । इन्द्र, चन्द्र आदि वैयाकरणों ने जो शब्द-लक्षण कहा वह सब इस व्याकरण में आ जाता है और जो यहां नहीं है वह कहीं भी नहीं मिलेगा । शाकटायन व्याकरण पर बहुत सी वृत्तियों की रचना हुई है ।

संस्कृत में अन्य जैन व्याकरणों के नाम नीचे दिये जाते हैं ।

क्रम सं०	नाम वैयाकरण	श्लोक संख्या	नाम व्याकरण	समय
1	बुद्धि सागर	7000	बुद्धि सागर व्याकरण	वि. स.
2	मद्रेश्वर सूरि		दीपक व्याकरण	1080

- 3 मलयगिरि सूरि 4500 शकानुशासन वि. 18वीं शती  
 4. सहजकीर्तिगण 1700 शकार्णव व्याकरण वि. स, 1680  
 (स्वोपज्ञ वृत्ति सहित)  
 5 विद्यानंद सूरि अनुपलब्ध विद्यानंद व्याकरण ,, 1321  
 6 जय सिंह सूरि — नूतन व्याकरण ,, 1440  
 7 प्रेमलाम — प्रेमलाम व्याकरण ,, 1283  
 8 शब्द भूषण 300 शब्द भूषण व्याकरण ,, 1770  
 9 हेमचंद्र सूरि 5691 सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन ,, 1245

सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन.-

गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह की विनती से जैनधर्म कलिकावत सर्वज्ञ हेमचन्द्र सूरि ने सिद्धराज के नाम के साथ अपना नाम जोड़कर “सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन” की रचना की। इस व्याकरण की छोटी बड़ी वृत्तियाँ और ‘उणादि’ पाठ, ‘गणपाठ’ ‘धातुपाठ’ ‘लिगानुशासन’ उन्होंने स्वयं लिखे जो कुल 125000 श्लोक प्रमाण है।

ग्रथकर्त्ता ने अपने से पहले के व्याकरणां में रही हुई त्रुटियाँ विशृङ्खलता, क्लिष्टता, विस्तार, दूरान्वय आदि से रहित निर्दोष और सरल व्याकरण की रचना की। सब प्रकार की टीकाओं और पचांशी से सर्वांगपूर्ण व्याकरण ग्रंथ श्री हेमचन्द्र सूरि के सिवाय और किसी एक ही ग्रंथकार ने निर्माण किया हो ऐसा समग्र भारतीय साहित्य में देखने में नहीं आता। इस व्याकरण की रचना इतनी आकर्षक है कि इस पर लगभग 62-63 टीकाएँ, संक्षिप्त तथा सहायक ग्रंथ एवं स्वतन्त्र रचनाएँ उपलब्ध होती हैं।

ग्रथकर्त्ता ने आत्म-विश्वास से कहा :—

### “आकुमारं यशः शाकटायनस्य”

अर्थात् शाकटायन का यश राजा “कुमार पाल” तक ही रहा है क्योंकि तब तक “सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन” न रचा गया था और न प्रचार में आया था।

हेमचन्द्राचार्य ने इसके अतिरिक्त निम्न विषयों पर अनेको ग्रंथ रचे :—

- |                 |                   |        |           |
|-----------------|-------------------|--------|-----------|
| 1. कोश          | 2. साहित्य अलंकार | 3. छंद | 4. दर्शन  |
| 5. इतिहास काव्य | 6. उपदेश          | 7. योग | 8. स्तुति |
| स्तोत्र         | 9. नीति           |        |           |

उस समय के विद्वत्समाज ने इस सरस्वती पुत्र को “कलिकाल सर्वज्ञ” की उपाधि से विभूषित किया था।

### व्याकरण (प्राकृत)

स्वामाविक बोलचाल की भाषा को प्राकृत कहते हैं। प्रदेशों की अपेक्षा से प्राकृत के अनेक भेद हैं। प्राकृत का अन्य स्वरूप अपभ्रंश कहलाता है। इसका प्राचीन देशी भाषाओं से सीधा सम्बन्ध है। इसका व्याकरण स्वरूप ई. छठी-सातवीं शताब्दी से निश्चित हो चुका था। महाकवि स्वयम्भू ने अपभ्रंश भाषा की रचना ई. 8वीं शताब्दी में की थी जो आज उपलब्ध नहीं है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपने समय के प्रवाह को देखकर “अपभ्रंश व्याकरण” के लगभग 120 सूत्रों की रचना की थी तथा उसके भिन्न विषयों पर वृत्तियाँ भी लिखीं।

चण्ड नामक विद्वान् कृत प्राकृत लक्षण जिसमें 99 सूत्र हैं सक्षिप्ततम व्याकरण है। चण्ड ने स्वयं इस पर वृत्ति भी लिखी।

अन्य प्राकृत व्याकरण जो रचे गये निम्न हैं :—

1. प्राकृत शब्दानुशासन त्रिविक्रम कृत 13वीं शताब्दी ई.  
(स्वोपज्ञ वृत्ति)
2. औदार्य चिन्तामणि श्रुतसागर वि. सं. 1575
3. चिन्तामणि व्याकरण शुभचन्द्र सूरि  
(स्वोपज्ञ वृत्ति)
4. अर्धभागधी व्याकरण शतावधानी मुनि रतनचन्द्र वि.स.1995
5. प्राकृत पाठमाला ,,

#### कर्णाटक शब्दानुशासन

अकलक ने कन्नड भाषा में इस व्याकरण की रचना की। इसमें 592 सूत्र हैं। नागवर्म द्वारा रचित ‘कर्णाटक भूषण’ व्याकरण की अपेक्षा यह बड़ा है और शब्दमणिदर्पण नामक व्याकरण से इसमें अधिक विषय हैं। इसलिये कर्णाटक शब्दानुशासन सर्वोत्तम व्याकरण माना जाता है।

#### अन्य विषयों में जैनो की कृतियां

पुस्तक का कलेवर बढ़ जाने के भय से तथा पाठको की दिल-चस्पी कायम रहे, इस विचार से शेष विषयों में केवल उपलब्ध ग्रंथ सख्या देकर ही संतुष्टि की जाती है :—

क्रम	संख्या	विषय	निर्मित ग्रंथ	संख्या	क्रम	संख्या	विषय	ग्रंथ	संख्या
1.	कोश	45	4	अलंकार	59				
2	काव्य	अनेक	5	नाटक	3				
8	छंद	31	6	संगीत	7				

7 कला	2	17 आयुर्वेद	—29
8 शिल्प	2	18 अर्थशास्त्र	—1
9 स्वप्न	6	19 योग व अभ्यास	—57
10 सामुद्रिक	8	20 धर्मोपदेश	—63
11 रमल	4	21 गणित	—13
12 लक्षणा	6	22 ज्योतिष	—84
13 आय	3	23 शकुन	—6
14 रत्नशास्त्र	5	24 निमित्त	—27
15 घातु विज्ञान	3	25 मन्त्र तन्त्र	} बहुल साहित्य
16 प्राण विज्ञान	5	विधि विधान	
		कल्प	
		पर्व	
		तीर्थ	



(1) नेमिचन्द्र

ई. 10वी-11वी शती के बीच चामुण्डराय सेनानायक व मंत्री के आप गुरु थे। चामुण्डराय ने अपने आदेश से श्रवण बेलगोल में 57' फीट ऊँची बाहुबलि की पाषाण प्रतिमा बनवाकर प्रतिष्ठित करवाई। आचार्य नेमिचंद्र की कृतियाँ ये हैं।

1. द्रव्यसंग्रह 2. गोम्मटसार 3. लब्धि सार 4. क्षणकसार
5. त्रिलोक सार

उपर्युक्त सभी ग्रंथ प्राकृत भाषा में हैं जो जीव, कर्म, कर्मक्षय, मोक्ष, तीन लोक आदि पर विवेचनात्मक प्रकाश डालते हैं।

(11) प्रभाचद्र

आचार्य प्रभाचद्र एक बहुश्रुत दार्शनिक विद्वान् थे। सभी दर्शनो के प्रायः सभी मौलिक ग्रंथों का उन्होंने अभ्यास किया था। यह तथ्य उनके द्वारा रचित “न्यायकुमुदचद्र” और “प्रमेयकमल मार्तण्ड” नामक ग्रंथों के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है।

इनका प्रथम ग्रंथ अकलंकदेव के “लघीस्त्रय” का व्याख्यान है और दूसरा आचार्य माणिक्यनंदि के “परीक्षामुख” नामक ग्रंथ का। श्रवणबेलगोल के शिलालेख नं० 40 में इन्हें “शब्दाम्भोरूह भास्कर” और “प्रथित तर्क ग्रथकार” बतलाया है इन्होंने शाकटायन व्याकरण पर एक विस्तृत न्यास ग्रंथ भी रचा था जिसका कुछ भाग उपलब्ध है। इनके गुरु का नाम पद्मनदि सैद्धांतिक था।

## (iii) बादिराज

11वीं शती ई. में बादिराज तार्किक होकर उच्चकोटि के कवि थे ।  
उन्होंने विद्वत्समाज ने तीन उपाधियों से विभूषित किया था ।

1. षट्कर्षणमुख
2. स्याद्वादविद्यापति
- 3: जगदेकमल्लवादी

नगर ताल्लुका के शिलालेख नं० 39 में बताया गया है कि—

‘वह समा में अकलंक थे ।

“प्रतिपादन करने में धर्म कीर्ति थे ।

“बोलने में बृहस्पति थे ।

न्यायशास्त्र में ‘अक्षपाद’ थे ।

इन्होंने अकलंक देव के “न्यायविनिश्चय” पर विद्वत्तापूर्ण विवरण लिखा है जो लगभग 2000 श्लोक प्रमाण है । सन् 1025 ई० में इन्होंने पार्व्वनाथ चरित रचा जो अत्यन्त सरस और प्रौढ़ रचना है । अन्य भी कई एक ग्रंथ और सूत्रों इन्होंने बनाए हैं । इनके गुरु का नाम मति सागर था ।

## (iv) हेमचन्द्र

हेमचन्द्राचार्य (कलिकाल सर्वज्ञ) सर्वतोमुखी प्रतिभाशाली विद्वान् तथा बहुसृजन ग्रंथकार थे । इतका जीवन काल 1089—1172 ई० सन् आंका जाता है । चालुक्य नरेश जय सिंह इनका पूर्ण भक्त था । इनके उत्तराधिकारी राजा कुमारपाल के यह गुरु थे । इनके द्वारा रचित व्याकरण ग्रंथों का जिक्र पीछे किया जा चुका है ।

संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं पर इनका पूरा आधिपत्य था । उन्होंने कोश रचकर अक्षय यशकीर्ति अर्जित की तथा अन्य

बहुमूल्य साहित्य का निर्माण करके मानव समाज की अनिवर्चनीय सेवा की ।

क्रम सं०	नाम कोश	श्लोक संख्या
1	अभिधान चिंतामणि (स्वोपज्ञ टीका सहित)	10000
2	अभिधान चिंतामणि—परिशिष्ट	204
3	अनेकार्थ कोश	1828
4	निघण्टुशेष (वनस्पति विषयक)	396
5	देशीनाममाला (स्वोपज्ञ टीकासहित)	3500

इनकी अन्य विषयो मे कृतिया —

साहित्य अलंकार—काव्यानुशासन.

स्वोपज्ञ अलंकार सूत्रामणि  
और विवेक वृत्ति सहित

छंद—छंदोनुशासन

छंदसूत्रामणिटीका सहित

दर्शन—प्रमाणमीमांसा (स्वोपज्ञवृत्ति सहित)

वेदाकुश (द्विजबदनचपेटा)

इतिहास काव्य—त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित (महाकाव्य).

परिशिष्ट पर्व (स्थविरावलिचरित)

योग—योगशास्त्र स्वोपज्ञ टीका सहित

स्तुतिस्तोत्र—बीतराग स्तोत्र

अन्य योग

अन्ययोग व्यवच्छेदद्वार्निशका

अयोगव्यवच्छेद द्वार्निशका

महदेव स्तोत्र

अन्य ग्रंथ—मध्यमवृत्ति सिद्धहेम शब्दानुशासन की टीका

रहस्यवृत्ति                   "                   "                   "

अहंन्तामसमुच्चय

नामेयनेमि द्विसंधान काव्य

न्याय बलाबल सूत्र

बलाबलसूत्र—बृहद्वृत्ति

बाल भाषा व्याकरण सूत्र वृत्ति

(v) रामचन्द्र

यह हेमचन्द्राचार्य के पट्टशिष्य थे । संस्कृत नाट्यशास्त्र के महान् लेखक थे । यह एक प्रौढ कवि भी थे । इन्होंने लगभग 100 ग्रंथ लिखे जिनमें से 47 इस समय मुद्रित हो चुके हैं । इनके रचित नाटकों के नाम निम्नलिखित हैं—

1 नल विलास

2 सत्य हरिश्चन्द्र

3 निर्मय भीम

4 कौमुदी मित्रानन्द

अपने शिष्य गुणचन्द्र के सहयोग से इन्होंने नाट्यदर्पण नाम का मुख्य नाट्य शास्त्र लिखा ।

कवितावलि तथा स्तोत्रों में मुख्य निम्न हैं—

1 युगादिदेव द्वात्रिंशका

2 प्रसाद द्वात्रिंशका

3 आदिदेव स्तव

4 नेमिस्तव

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर लिखित इनका भाष्य व्याकरण ग्रंथों में अमूल्य निधि है ।

(vi) जिनप्रभ सूरि

चतुर्दशी शताब्दी ई० में जिनप्रभ सूरि एक विरव्याप्तनामा विद्वान् हुए । इन्होंने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में अनेक मौलिक ग्रंथ और भाष्य लिखे । इनकी एक अति उपयोगी और आकर्षक कृति तीर्थ कल्प या विविध तीर्थ कल्प है जो जैन तीर्थस्थानों की एक बृहद्सूची है जिसमें तीर्थ का व्योरा, नाम संस्थापक, नाम राजा जिसने इसकी

प्रतिष्ठा की इत्यादि का वर्णन है। तीर्थ में घटित होने वाली घटनाओं तथा समारोहों का तिथिक्रमानुसार वर्णन इसमें है। संस्कृत-प्राकृत मिश्रित गद्य-पद्य में यह ग्रंथ लिखा गया है।

(vii) यशोविजय

श्वेताम्बर जैन परम्परा में हेमचन्द्राचार्य के पश्चात् यशोविजय जैसा सर्वशास्त्र पारंगत दूसरा विद्वान नहीं हुआ। इन्होंने काशी में विद्याध्ययन किया था और नव्वन्याय के न केवल यह विद्वान हो थे किन्तु उसी शैली में संस्कृत में उन्होंने कई ग्रंथ भी रचे।

1 अनेकात व्यवस्था      2 ज्ञान बिन्दू      3 जैन तर्क भाषा

4 नय प्रदीप      5 नयोपदेश      6 नय रहस्य

7 न्याय खण्ड खाद्य      8 न्यायालोक      9 भाषा रहस्य

10 प्रमाण रहस्य      11 अध्यात्म मत परीक्षा

12 अध्यात्म सार      13 अध्यात्मोपनिषद्

14 आध्यात्मिकमत खण्डन      15 उपदेश रहस्य

16 ज्ञान सार      17 देव धर्म परीक्षा      18 गुरु तत्त्व निर्णय

निम्नलिखित ग्रंथों पर इन्होंने अमूल्य भाष्य लिखे हैं।

1 अष्ट सहस्री      2 शास्त्र वार्त्ता समुच्चय      3 स्याद्वाद  
भँजरी      4 योगविशिका      5 योग सूत्र      6 कर्म प्रकृति

7 काव्य प्रकाश

गुजराती भाषा में भी इन्होंने प्रामाणिक ग्रंथ लिखे हैं। इनकी विचारसरणि बहुत ही परिष्कृत और संतुलित थी।

विशेष—

अनेक प्राचीन जैन ग्रंथों का अनुवाद हिंदी, गुजराती, ठु डारी, अंग्रेजी जर्मन में हो चुका है।

राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रोत्साहन में जैनों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हिन्दी में जैन विद्वानों की ओर से मौलिक ग्रंथ भी लिखे गये हैं।

## अध्याय 15(क)

### जैन कला और पुरातत्व

कला का ध्येय 'कला' है। कला के विकास में मानवीय जीवन के विकास की कहानी निहित है। सार यह निकला कि कला का ध्येय "जीवन का उत्कर्ष" है।

कला की परिभाषा "सत्यं, शिवं, सुन्दर," की जाती है। अर्थात् जो सत्य है, कल्याणकर है और सुन्दर है वही कला है। यह समस्त 'जैन कला' में सुघटित होते हैं।

किसी सभ्यता व संस्कृति में कला का विकास धीरे धीरे होता है। यह विकास जब चरमावस्था को पहुँचता है तो उनके भग्नावशेष उस महान् संस्कृति का दिग्दर्शन कराने में सहायक होते हैं। किसी संस्कृति के अतीत की गौरव गाथा उसके शेष रहे चिन्ह ही बतलाते हैं। यह स्थिति श्रमण संस्कृति या जैन संस्कृति पर ठीक लागू होती है भले ही भारतीय जन गणना में जैनी संख्या में "आटे में नमक के बराबर" बचे हो या राजनीति, धर्मनीति और सामाजिक संगठन में पिछड़ गये हों परन्तु उनके शानदार अतीत का, इन प्राचीन कला कृतियों द्वारा सिंहावलोकन करके आधुनिक युग के लोग इतना तो अवश्य मानेंगे कि ये जैन लोग भी किसी समय भारत की चहुँदिसी समृद्धि में अग्रसर रहकर सेवा रत रहे थे। इन्हें तुच्छ मत समझो।

“खण्डहर बता रहे हैं कि इमारत अजीम थी”

सर्व प्रथम हम जैन गुफाओं से अपने इस लेख को आरम्भ करते हैं—

### जैन गुफाएँ

यह एकातवासी जैन मुनियों की साधना का आवश्यक अंग बताया गया है। आरम्भ में शिलाओं से आधारित प्राकृतिक गुफाओं का प्रयोग किया जाता रहा। ये ही जैन परम्परा के मान्य अकृत्रिम चैत्यालय कहे जा सकते हैं।

क्रमशः इन गुफाओं का विशेष सस्कार व विस्तार कृत्रिम साधनो से किया जाने लगा और जहाँ उसके योग्य शिलाएँ मिली उन्हें काट कर 'गुफा-विहार तथा 'उपासना स्थान' बनाया जाने लगा। इन्हें कृत्रिम गुफाएँ कहते हैं जिनमें जैन कला खूब पनपी।

बराबर व नागार्जुनी पहाड़ियों की जैन गुफाएँ:—

ये पहाड़ियाँ गया से 15 मील दूर पटना-गया रेलवे के 'बेला' नामक स्टेशन से 8 मील पूर्व की ओर हैं। 'बराबर' पहाड़ी में चार तथा नागार्जुनी पहाड़ी में तीन गुफाएँ हैं। ये अशोक महान् और उसके पुत्र दशरथ द्वारा आजीवक सम्प्रदाय के साधुओं को दी गई थीं। यह सम्प्रदाय उस समय से 200 वर्ष पश्चात् जैन धर्म में विलीन हो गया क्योंकि आजीवक मुनियों का क्रिया-कलाप जैन मुनियों से अधिकोश मिलता था।

2 उदयगिरि व खण्डगिरि की गुफाएँ—

उड़ीसा में कटक के समीपवर्ती उदयगिरि खण्डगिरि नामक पर्वतों की गुफाएँ, इनमें प्राप्त लेखों के आधार पर ई० पू० द्वितीय शताब्दी की सिद्ध होती हैं।

उदयगिरि की हाथी गुंफा नामक गुफा में प्राकृत भाषा का एक सुविस्तृत लेख पाया गया है जिसमें कलिंग सम्राट् खारवेल के बाल्य काल व राज्य के 13 वर्षों का चरित्र विधिवत् वर्णन है। यह लेख

अरिहंतों व सिद्धों को नमस्कार के साथ प्रारम्भ हुआ है और उसकी 12वीं पंक्ति में स्पष्ट उल्लेख है कि उन्होंने अपने राज्य के 12 वें वर्ष में मगध पर आक्रमण करके वहां के शुंगवशीय राजा बृहस्पतिमित्र को पराजित किया और वहां से कलिंग जिन की विख्यात मूर्ति वापिस अपने देश में लाया जिसे बहुत पहले नंदराजा अपहरण करके ले गया था। यह गुफा जैन-विहार रूप में रही है। इसका नाम 'रानी गुफा' भी है।

उदयगिरि व खण्डगिरि में कुल मिला कर 19 गुफाएँ हैं।

नीलगिरि नामक पहाड़ी में तीन गुफाएँ और देखने में आती हैं। विद्वानों का मत है कि इन गुफाओं में चित्रण कला 'भरहुत' व साची के स्तूपों से अधिक सुन्दर है।

खण्डगिरि की 'नवमुनि' नामक गुफा में दसवीं शती ई० का एक शिलालेख है जिसमें 'जैनमुनि शुभचंद्र' का नाम आया है। इससे प्रतीत होता है कि यह स्थान ई० पू० द्वितीय शती से लेकर दसवीं शती ई० तक जैन धर्म का एक सुदृढ़ केन्द्र रहा था।

### 3 राजगिरि की सोन मण्डार गुफा—

प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई० का ब्राह्मी लिपि का एक लेख इस में मिलता है जिसके अनुसार आचार्यरत्न 'वैरदेव मुनि' ने यहाँ जैन मुनियों के निवास के लिए दो गुफाएँ निर्माण कराईं। एक जैन मूर्ति तथा चतुर्मुखी जैन प्रतिमायुक्त एक स्तम्भ वहाँ अब भी विद्यमान है।

### 4 प्रयाग तथा कौसम (कौशाम्बी) की दो गुफाएँ—

इन में दूसरी शती ई० पू० का शुङ्गकालीन लिपि में एक लेख है। इस लेख में कहा गया है कि इन गुफाओं को अहिच्छत्रा के "आषाढ-सेन" ने काश्यपीय "अर्हन्तो" के लिये दान किया। भगवान् महावीर काश्यपगोत्रीय थे। सम्भव है उनके मुनि "काश्यपीय अर्हत्" कहलाये हों।



## ५. जूनागढ़ (काठियावाड़)

यहा "बाबा प्यारा मठ" के समीप कुछ गुफाए है जो तीन पंक्तियों में स्थित है। एक इनमें "चैत्यगुफा" है। इन जैन गुफाओं में एक गुफा ध्यान देने योग्य है जो द्वितीय शती ई०पू० अर्थात् "क्षत्रप राजाओं" के काल की प्रतीत होती है। इस गुफा में जो खण्डित लेख मिला है उसमें क्षत्रप राज्यवश का तथा "चष्टत" के प्रपौत्र व 'जयदामन' के पौत्र "रुद्रसिंह प्रथम" का उल्लेख है। यह लेख न पढे जाने पर भी उसमें जो केवल-ज्ञान, जरामरण से मुक्ति आदि शब्द पढे गये है, उनसे तथा गुफा में अंकित स्वस्तिक, मद्रासन, मीन युगल आदि प्रख्यात जैन मांगलिक चिह्नों के चित्रित होने से, वे निश्चय ही जैन साधुओं से सम्बन्धित है। सम्भवतया "अंतिम अग ज्ञान के ज्ञाता धरसेन आचार्य" ने यहाँ निवास किया हो और भूतबलि और पुष्पदंत को यही "षट्खण्डागम" का विशेष ज्ञान-दान दिया हो।

इसके समीप ही "ढंक" नामक स्थान पर दो गुफाए है। इन में ऋषभ, पार्श्व, महावीर आदि तीर्थंकरों की प्रतिमाए है। जैन साहित्य में ढंक पर्वत का अनेक स्थानों पर उल्लेख आया है। पादलिप्त सूरि के शिष्य "नागार्जुन" यही के निवासी कहे गये हैं।

## ६. मध्य प्रदेश में उदयगिरि की जैन गुफाएं :—

यह उदयगिरि इतिहास प्रसिद्ध विदिशा नगर से उत्तर पश्चिम की ओर वेतवा नदी के उस पार दो तीन मील की दूरी पर है। इस पहाड़ी पर पुरातत्व विभाग द्वारा अंकित 20 गुफाए व मंदिर हैं। इन में "पहली" तथा "बीसवीं, ये दो स्पष्ट रूप से जैन गुफाएं है। पूर्व दिशावर्ती 20वीं गुफा में पार्श्वनाथ तीर्थंकर की अति सुंदर मूर्ति विराजमान है। खण्डित होने पर भी नागफण अब भी इसकी कलाकृति को प्रकट कर रहा है। यहाँ एक 'संस्कृत प्रथात्मक लेख'

खुदा हुआ है, जिसके अनुसार इस मूर्ति की प्रतिष्ठा गुप्त स० 106 में (ई० सन् 426, कुमारगुप्त काल) में कार्तिक कृष्णा पंचमी को 'आचार्य भद्रान्वयी मोशर्म मुनि' के शिष्य "शकर" द्वारा की गई थी। इन शकर ने अपना जन्मस्थान कुरुदेश बताया है।

### 7 चंद्रगिरि गुफा (श्रवण बेल गोल) :—

चंद्रगिरि पहाड़ी पर यह गुफा स्थित है। सम्राट् चंद्र गुप्त मौर्य ने, आचार्य भद्रबाहु का शिष्यत्व स्वीकार करने के पश्चात्, साधुवेष में यहाँ तपस्या की थी।

इस गुफा के समीप एक 'भद्रबाहु की गुफा' भी है। कहा जाता है कि यहाँ श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी ने देहोत्सर्ग किया था। यहाँ इनके चरण-चिह्न अंकित हैं और पूजित होते हैं। दक्षिण भारत में यही सबसे प्राचीन जैन गुफा सिद्ध होती है।

### 8 महाराष्ट्र प्रदेश में गुफा-समूह—

उस्मानाबाद से पूर्वोत्तर दिशा में लगभग 12 मील की दूरी पर पर्वत में एक प्राचीन गुफा समूह है इनमें मुख्य गुफा दूसरी है जिसमें पार्श्वनाथ तीर्थंकर की भव्य प्रतिमा विराजमान है। तीसरी व चौथी गुफाओं में भी जिनमें प्रतिमाएँ विराजमान हैं। तीसरी गुफा के स्तम्भों की बनावट कलापूर्ण है।

बर्जस साहब के मत से ये गुफाएँ अनुमानतः ई० पू० 500-650 के बीच की हैं।

### 9 सित्तनवासल (सिद्धानावास:)—

सित्तनवासल जैन मुनियों का एक प्राचीन केंद्र पुडुकोटाई से 9 मील दूर स्थान है। यह 'सित्तनवासल नाम सिद्धानावासः से अष्ट भ्रष्ट होकर बना प्रतीत होता है। यहाँ के विशाल शिला टीलों में

अनी हुई एक जैन गुफा बड़ी महत्वपूर्ण है। यहाँ एक ब्राह्मी लिपि का लेख भी मिला है जो ई. पू. तीसरी शती का (अशोक कालीन) प्रतीत होता है। इस लेख में स्पष्ट लेख है कि गुफा का निर्माण जैनो के निमित्त कराया गया था। गुफा बड़ी विशाल  $100 \times 50$  फुट है इसमें अनेक कोठरिया हैं जिनमें समाधि शिलाएँ भी बनी हुई हैं। ये शिलाएँ  $6' \times 4'$  है। वास्तुकला की दृष्टि से तो गुफा महत्वपूर्ण है ही किन्तु इससे भी अधिक महत्व इसकी चित्रकला का है जिसका विवरण आगे चित्रकला शीर्षक में दिया जाएगा। इस गुफा का संस्कार पल्लव नरेश महेन्द्रवर्मन (८वी शती ई.) के काल में हुआ।

#### 10 दक्षिण भारत में बादामी की जैन गुफा—

इसका निर्माणकाल अनुमानतः सातवी शती का मध्य भाग है। यह गुफा 16 फुट गहरी तथा  $31 \times 19$  फुट लम्बी चौड़ी है। पीछे की ओर मध्य भाग में देवालय है, और तीनों तरफों की दीवारों में मुनियों के निवास के लिए कोष्ठक बने हुए हैं। स्तम्भों की आकृति बम्बई की एलीफेन्टा की गुफाओं के समान है।

यहाँ चमर धारियों सहित महावीर तीर्थंकर की मूल पद्मासन मूर्ति के अतिरिक्त दीवारों व स्तम्भों पर भी जैनमूर्तियां खुदी हुई हैं ऐसा माना जाता है कि राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष (८वी शती) ने राज्य त्याग कर व जैन दीक्षा लेकर इसी गुफा में निवास किया था। गुफा के बरामदों में एक ओर पार्श्वनाथ व दूसरी ओर बाहुबलि की लगभग  $7\frac{1}{2}$  फुट ऊँची प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं।

#### 11. ऐहोल गुफाएँ—

बादामी ताल्लुके में स्थित 'ऐहोल' नामक ग्राम के समीप पूर्व और उत्तर की ओर ये गुफाएँ हैं जिनमें जैन मूर्तियां विद्यमान हैं। बाईं भित्ति में पार्श्वनाथ की मूर्ति है, जिसके एक ओर नाग और दूसरी ओर नागिन स्थित है। दाहिनी ओर चैत्य वृक्ष के नीचे जिन मूर्ति

बनी है। इस गुफा की सहस्रकणो वाली पार्श्वनाथ की प्रतिमा कला की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है। अन्य जैन आकृतियां व बिन्ह भी अचुर मात्रा में विद्यमान है। सिंह, मकर व द्वारपालों की आकृतिया भी कलापूर्ण हैं और एलिफेंटा कलाकृतियों का स्मरण कराती है। गुफाओं से पूर्व की ओर वह 'मेघुटी' नामक जैन मन्दिर है जिसमें 'चालुक्य नरेश पुलकेशी' 'शक सं० 556' (ई० 634) का उल्लेख है। यह शिलालेख अपनी सस्कृत काव्यशैली के विकास में भी अपना स्थान रखता है। इस लेख के लेखक रवि कीर्ति ने अपने को काव्य के क्षेत्र में कालिदास और भारवी की कीर्ति को प्राप्त कहा है। 'कालिदास व भारवि के काल-निर्णय में यह लेख बड़ा सहायक हुआ है, क्योंकि इसी से उनके काल की अंतिम सीमा प्रामाणिक रूप से निश्चित हुई है।

ऐहोल सम्भवतः 'आर्यपुर' का अपभ्रष्ट है।

## 12. एलोरा:—

यह स्थान यादवनरेशो की राजधानी देवगिरि (वर्तमान दौलताबाद) से लगभग 16 मील दूर है और वहाँ का शिलापर्वत अनेक गुफा मंदिरों से अलंकृत है। यहाँ 'कैलाश' नामक शिव मंदिर है जिसकी योजना और शिल्प कला इतिहास-प्रसिद्ध है। यहाँ बौद्ध, हिंदू व जैन तीनों सम्प्रदायों के शैल मंदिर बड़े सुन्दर प्रणाली में बने हुए हैं।

यहाँ पाँच जैन गुफाएँ हैं जिनमें से तीन—'छोटा कैलाश, इन्द्र सभा, जगन्नाथ सभा'—कला की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। 'छोटा कैलाश' एक ही पाषाण शिला को काट कर बनाया गया है। मंदिर 80 फुट चौड़ा व 130 फुट लम्बा है मण्डप लगभग 36 फुट लम्बा चौड़ा है और उसमें 16 स्तम्भ हैं।

'इन्द्रसभा' नामक गुफामंदिर में 32 फुट ऊँचा द्वजस्तम्भ है।

पीछे जाने पर द्रुतल्ला सभागृह मिलता है जो इन्द्रसभा के नाम से प्रसिद्ध है। दोनों तलो में प्रचुर चित्रकारी बनी हुई है। ऊपर की शाला 12 सुखचित खम्भों से अलंकृत है। शाला के दोनों ओर भगवान् महावीर की विशाल प्रतिमाएं हैं और पास ही 'कक्ष' में इन्द्र और हाथी की मूर्तियां बनी हुई हैं। इन्द्र सभा की एक बाहरी दीवाल पर 'पार्श्वनाथ की तपस्या व कमठ द्वारा उनपर किये गये उपसर्ग का' बहुत सुन्दर व सजीव उत्कीर्ण किया गया है। पार्श्वनाथ कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानस्थ हैं। दक्षिण की दीवाल पर लताओं से लिपटी 'बाहुबलि की प्रतिमा' उत्कीर्ण है। अनुमानतः इन्द्र सभा की रचना तीर्थंकर के जन्म कल्याणक उत्सव की स्मृति में हुई है।

इन्द्र सभा के समीप ही 'जगन्नाथ सभा' है, जिसका विन्यास इन्द्र सभा के सदृश ही है।

इन गुफाओं का निर्माणकाल 800 ई० के लगभग माना जाता है।

### 13. दक्षिण त्रावणकोर:—

यह त्रिवेन्द्रम नगरकोइल मार्ग पर स्थित कुजीपुर नामक ग्राम से पाचमील उत्तर की ओर पहाड़ी पर है जो अब भी भगवती मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। शिला के गुफा भाग के दोनों प्रकोष्ठों में विशाल पद्मासन जिन मूर्तियाँ सिंहासन पर प्रतिष्ठित हैं। शिला का समस्त भाग (अंदर-बाहरी) जैन तीर्थंकरों की कोई 30 उत्कीर्ण प्रतिमाओं से अलंकृत है। कुछ के नीचे केरल की प्राचीन लिपि 'वत्तजेत्तु' में लेख भी है जिनसे उस स्थान का जैनत्व तथा निर्मित काल 9वीं शती सिद्ध होता है।

### 14. अंकाई-तंकाई गुफा-समूह:—

थेवला ताल्लुके में मनमाड रेलवे जंक्शन से नौ मील दूर अंकाई

नामक स्टेशन के समीप स्थित है। तीन हजार फुट ऊँची पहाड़ियाँ में सात गुफाएँ हैं, जो आकार में छोटी होने पर भी कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। पहली और दूसरी गुफा दुतल्ली है। तीसरी गुफा के मण्डप की छत पर 'कमल' की आकृति बड़ी सुन्दर है। उसकी पंखुड़ियाँ चार कतारों में दिखाई गई हैं और उन पंखुड़ियों पर देवियाँ वाद्य सहित नृत्य कर रही हैं। देव-देवियों के अनेक युगल बाहनों पर आरुढ़ हैं। स्पष्टतः यह दृश्य तीर्थंकर के जन्मकल्याणक के उत्सव का है। गर्मगृह में शान्तिनाथ व उनके दोनों ओर पार्श्व-नाथ की मूर्तियाँ हैं। चौथी गुफा का बरामदा 30' × 8' है। बरामदे के स्तम्भ पर एक लेख भी है जो पढ़ा नहीं जा सकता, किंतु लिपि पर से 11वीं शती का अनुमान किया जाता है। शेष गुफाएँ टूटी फूटी अवस्था में हैं।

#### 15. ग्वालियर की जैन गुफाएँ:—

यद्यपि गुफा युग बहुत पूर्व समाप्त हो चुका था तो भी जैन लोग 15 वीं शती तक गुफाओं का निर्माण कराते रहे। इसका उदाहरण है 'तोमर राजवंश' कालीन ग्वालियर की जैन गुफाएँ।

जैनियों ने 15वीं शती तक समस्त पहाड़ी को गुफामय कर दिया। 'इन गुफाओं की विशेषता है इनकी संख्या, विस्तार व मूर्तियों की विशालता'। गुफाएँ बहुत बड़ी-बड़ी हैं। उनमें तीर्थंकरों की 60 फुट ऊँची प्रतिमाएँ देखने को मिलती हैं।

उर्वाही द्वार पर प्रथम गुफा समूह में लगभग 25 विशाल तीर्थंकर मूर्तियाँ हैं, जिनमें एक 57 फुट ऊँची है। आदिनाथ व नेमिनाथ की 30 फुट ऊँची मूर्तियाँ हैं। अन्य छोटी छोटी प्रतिमाएँ भी हैं।

आधा मील ऊपर दूसरा गुफा समूह है जहाँ 20-30 फुट तक की

अनेक मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। बाबड़ी के समीप एक गुफा कुन्ज में पार्श्व-  
नाथ की 20 फुट ऊँची पद्मासन मूर्ति तथा अन्य तीर्थंकरों की  
कायोत्सर्ग मुद्रायुक्त अनेक विशाल मूर्तियाँ हैं। यहाँ की प्रधान मूर्ति  
60 फुट ऊँची है।

इन गुफा मन्दिरों में अनेक शिलालेख भी मिले हैं जिससे ज्ञात  
होता है कि इन गुफाओं की खुदाई सन् 1441 से लेकर सन् 1474  
तक 33 वर्षों में पूर्ण हुई। इतिहास की दृष्टि से इन गुफाओं का  
बड़ा महत्व है।

इनके अतिरिक्त सैकड़ों जैन गुफाएं देश भर में भ्रम तत्र बिखरी  
हुई पाई जाती हैं जो पुकार पुकार कर जैनो की ऊँची ज्ञान की  
कहानी बयान कर रही हैं। और बता रही हैं कि भारतीय संस्कृति  
को पुष्पित और पल्लवित करने में जैनो का कितना सशक्त योगदान  
रहा है।

जैन मन्दिर—

जैन वास्तु कला ने मन्दिरों के निर्माण में ही अपना चरम उत्कर्ष प्राप्त किया। इन मन्दिरों के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण ग्यारहवीं शती ई० व उसके पश्चात् काल के उपलब्ध है।

1 लोहानीपुर—

प्राचीनतम जैन मन्दिर के बिन्ह बिहार में, पटना के समीप लोहानीपुर में, पाये गये हैं, जहाँ कुमराहर और बुलदीबाग की मौर्य-कालीन कला-कृतियों की परम्परा के प्रमाण मिले हैं। यहाँ एक जैन मन्दिर की नींव मिली है। यह मन्दिर 8-10 फुट वर्गाकार था। यहाँ की ईंटे मौर्यकालीन सिद्ध हुई है। यहाँ से एक मौर्यकालीन रजत सिक्का तथा दो मस्तकहीन जिनमूर्तियाँ मिली है, जो अब पटना संग्रहालय में सुरक्षित है।

2 ऐहोलः—

वर्तमान में सबसे प्राचीन जैन मन्दिर जिसकी रूपरेखा सुरक्षित है व निर्माण काल भी निश्चित है, वह है दक्षिण भारत में बादामी के समीप 'ऐहोल का मेघुटी' नामक जैन मन्दिर जो कि वहाँ से उपलब्ध शिलालेखानुसार शक संवत् 556 (ई 634) में पश्चिमी चालुक्य नरेश पुलकेशी द्वितीय के राज्यकाल में 'रविकीर्ति' द्वारा बनाया गया था। यही रविकीर्ति मन्दिर-योजना में ही नहीं वरन् काव्य-योजना में भी अति प्रवीण और प्रतिभाशाली थे। यह मन्दिर अपने पूर्ण



जैन स्तूपः—

मथुरा के 'कंकाली टीले की खुदाई से जैन स्तूप का जो भग्नाव-शेष प्राप्त हुआ है, उससे उसके मूलविन्यास का स्वरूप प्रकट हो जाता है। स्तूप लगभग गोलाकार था जिसका व्यास 47 फुट पाया जाता है। यह स्तूप छोटी बड़ी ईंटों से बनाया गया था। पूरा स्तूप कैसा था, इसका कुछ अनुमान बिखरी हुई प्राप्त सामग्री के आधार पर लगाया जा सकता है। इसके अनेक प्रकार की चित्रकारी युक्त पाषाण मिले हैं। दो ऐसे 'आयागपट' मिले हैं, जिनपर स्तूप की पूर्ण आकृतियाँ चित्रित हैं।

स्तूप की गुम्मत पर छः पक्तियों 'का एक लेख है' जिस में अर्हत वर्द्धमान को नमस्कार के पश्चात् कहा गया है कि 'श्रमण-आविका आर्या लवणशोभिका नामक गणिका की पुत्री श्रमण-आविका वासु गणिका ने जिनमन्दिर में अर्हत की पूजा के लिये अपनी माता, भगिनी तथा दुहिता-पुत्री सहित निर्ग्रथों के अरहन्त आयतन में अरहन्त का देवकुल (देवालय) आयाग तथा, प्रपा (प्याऊ) तथा शिलापट प्रतिष्ठित कराये।'

यह शिलापट अक्षरों की आकृति व चित्रकारी द्वारा अपने को कुषाण कालीन (पहली-द्वितीय शताब्दी) सिद्ध करता है।

'विवंधतीर्थ कल्प' में लिखा है कि इस स्तूप का भगवान् पार्श्वनाथ के समय (877-777 ई० पू०) में जीर्णोद्धार कराया गया।

रूप में सुरक्षित नहीं रह सका । इसका बहुत कुछ अंश ध्वस्त हो चुका है । तथापि इसका इतना भाग फिर भी सुरक्षित है कि जिससे उसकी योजना व शिल्प का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है ।

### -मन्दिर शैली-

गुप्त व चालुक्य युग से पश्चात्कालीन वास्तुकला की शिल्प शास्त्रों में तीन शैलियाँ निर्दिष्ट की गई हैं.—

1. नागर
2. द्राविड
3. वेसर

सामान्यतः 'नागर शैली' उत्तर भारत में हिमालय से विन्ध्य पर्वत तक प्रचलित हुई ।

'द्राविड शैली' दक्षिण में कृष्णा नदी से कन्याकुमारी तक तथा 'वेसर' मध्यभारत में विन्ध्यपर्वत और कृष्णा नदी के बीच विस्तृत हुई । किन्तु यह प्रादेशिक विभाग कड़ाई से पालन किया गया नहीं पाया जाता । प्रायः सभी शैलियों के मन्दिर सभी प्रदेशों में पाये जाते हैं, तथापि आकृति-वैशिष्ट्य को समझने के लिये यह शैली-विभाजन सिद्ध हुआ है ।

आगामी काल के हिन्दू व जैन मन्दिर इन्हीं शैलियों, विशेषतः नागर व द्राविड शैलियों, पर बने पाये जाते हैं ।

ऐहोल का मेघुटी जैन मन्दिर, जिसका पीछे वर्णन किया गया है, द्राविड शैली का सर्व प्राचीन मन्दिर कहा जा सकता है । इस शैली का विकास दक्षिण के नाना स्थानों में पूर्ण अथवा ध्वस्त जैन मन्दिरों में देखने को मिलता है ।

### 3. हुवच. —

तीर्थहल्लि के समीप 'हुवच' अथवा हुमच एक अति प्राचीन जैन केंद्र रहा है। ई० सन् ८९७ के एक लेख में वहाँ के मन्दिर ११वीं शती में 'वीर सातर' आदि सातरवशी राजाओं द्वारा निर्मापित पाये जाते हैं। इनके द्राविडशैली की अलकरण रीति तथा सुन्दरता से उत्कीर्ण स्तम्भों की सत्ता पाई जाती है। जैन मठके समीप भगवान् आदिनाथ का मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। इस मन्दिर में दर्शनाभारतीय शैली की 'कास्य मूर्तियों' का अच्छा संग्रह है। इसी मन्दिर के समीप बाहुबलि मन्दिर टूटी फूटी अवस्था में विद्यमान है।

तीर्थहल्लि के मार्ग पर ३००० फुट ऊँची 'गुड्ड' नामक पहाड़ी पर एक प्राचीन जैन तीर्थ सिद्ध होता है। एक 'पार्श्वनाथ मन्दिर' अब भी इस पहाड़ी पर शोभायमान है जिस में भगवान् पार्श्वनाथ की विशाल कार्यात्सर्ग मूर्ति पर नाग के दो लपेटे स्पष्ट दिखाई देने हैं जो सिर पर सप्तमुखी छाया किये हुए हैं।

पहाड़ी से उतरते हुए जगह जगह जैन मन्दिरों के ध्वसावशेष मिलते हैं। तीर्थकरो की सुन्दर मूर्तियाँ व चित्रकारीयुक्त पापाखण्ड प्रचुरता से यत्र-तत्र बिखरे दिखाई देते हैं, जिनमें इस स्थान का प्राचीन समृद्ध इतिहास आँखों के सामने झल जाता है।

### 4. लकुन्डी.—

धारवाड जिले में, गडग रेलवे स्टेशन से सात मील दक्षिण पूर्व की ओर लकुन्डी (लौकिक गुन्डी) नामक ग्राम है जहाँ दो सुन्दर जैन मन्दिर हैं इनमें के बड़े मन्दिर में सन् ११७२ ई० का शिलालेख है। यहाँ भगवान् महावीर की बड़ी सुन्दर मूर्ति विराजमान थी जा इधर छ. वर्षों से दुर्भाग्यतः विलुप्त हो गई है। भीतरी मण्डप के द्वार

पर पूर्वोक्त लेख खुदा हुआ है । ऊपर पद्मासन जिन मूर्ति है और उसके दोनो ओर चंद्र-सूर्य दिखाये गये हैं । लकुन्डी के इस जैन मन्दिर ने द्राविड वास्तु-शिल्प को बहुत प्रभावित किया है ।

#### 5. जिननाथपुर व हलेबीड.—

हायसल राजवंश के काल में (13वीं शती) द्राविड़ कला में 'अलकरण रीति' में समुन्नति हुई । पाषाण पर कारीगरो की छैनी अधिक कौशल से चली है जिसके दर्शन हमे जिननाथपुर तथा हलेबीड के जैन मन्दिरों में होते हैं ।

'जिननाथपुर, श्रवण बेलगोल मे एक मील उत्तर की ओर है । ग्राम का नाम ही बता रहा है कि यहाँ जैन मन्दिरों की प्रख्याति रही है । यहाँ का शान्तिनाथ मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है । इसे 'रेचिमय्य' नामक व्यक्ति ने बनवाकर सन् 1200 के लगभग सागरनदि सिद्धात देव को सौपा था । नवरंग के स्तम्भो पर बड़ी सुन्दर व बारीक चित्रकारी की गई है । छतों की खुदाई भी देखने योग्य है । बाहिरी दीवारों पर रेखा चित्रों की खुदाई की गई है । इन पर यक्ष यक्षियों व तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ भी सौंदर्यपूर्ण बनी हैं ।

हलेबीड मे एक ही घेरे के भीतर तीन जैन मन्दिर हैं जिनमें पार्श्वनाथ मन्दिर उल्लेखनीय है । छत की चित्रकारी उत्कृष्ट है जो 12 अति सुन्दर आकृतिवाले काले पाषाण के स्तम्भों पर आधारित है । इन स्तम्भों की रचना, खुदाई और सफाई देखने योग्य है । उनकी घुटाई तो ऐसी की गई है कि उसमे आज भी दर्शक दर्पण के समान अपना मुख देख सकता है । पार्श्वनाथ की 12 फुट ऊँची विशाल मूर्ति सतफणी नाग से युक्त है । मूर्ति मुद्रा सच्चै योगी की ध्यान व शान्ति की छटा को लिये हुए है । शेष दो आदिनाथ व शान्तिनाथ मन्दिर भी अपना सौंदर्य रखते हैं ।

ये सभी मन्दिर 12वीं शती की कृतियाँ हैं ।

#### 6. मूडबिद्री का चद्रनाथ मन्दिर:—

होयसल काल के पश्चात् विजयनगर राज्य का युग प्रारम्भ होता है, जिसमें द्राविड़ वास्तु कला का कुछ और भी विकास हुआ । इस काल की जैन कृतियों के उदाहरण गनीगिति, तिरुमल्लाई, तिरुपरुत्ति कुण्डरम्, तिरप्पनमूर, मूडबिद्री आदि स्थानों में प्रचुरता से पाये जाते हैं । इनमें सब से प्रसिद्ध मूडबिद्री का चद्रनाथ मन्दिर है जिसका निर्माण 14वीं शती में हुआ । यह मन्दिर एक घेरे के भीतर है । प्रागण में अति सुन्दर मानस्तम्भ के दर्शन होते हैं । मन्दिर में लगा-तौर तीन मण्डपशालाएँ हैं—तीर्थकर मण्डप, गद्दी मण्डप व चित्र मण्डप । स्तम्भ बड़े स्थूल और 12 फुट ऊँचे हैं जो उत्कीर्ण हैं । उन पर कमलदलों की खुदाई असाधारण सौष्ठव और सावधानी से की गई है ।

#### 7. जैन विहार (पहाडपुर)

जैन विहार का सर्वप्रथम उल्लेख पहाडपुर (जिला राजगाही-वर्तमान बगला देश) के उस ताम्रपत्र के लेख में मिलता है जिसमें पचस्तूप निकाय या कुल के निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्य गुहनदि तथा उनके शिष्य अनुशिष्यों से अधिष्ठित बिहार मन्दिर में अर्हन्तो की पूजा अर्चा के निमित्त अक्षयदान दिये जाने का उल्लेख है । यह गुप्त स० 159 (ई० 472) का है । लेख में इस बिहार की स्थिति 'बट-गोहाली' में बताई गई है । यह विहार वही है जो पहाडपुर की खुदाई से प्रकाश में आया है । सातवीं शती के पश्चात् किसी समय इस बिहार पर बौद्धों का अधिकार हो गया और वह 'सोमपुर विहार' के नाम से प्रख्यात हुआ, किन्तु 7वीं शती में चीनी यात्री 'ह्यूनसांग' ने अपने यात्रा-वर्णन में इस बिहार का कोई उल्लेख नहीं किया,

जिससे स्पष्ट है कि उस समय तक वह बौद्ध-केन्द्र नहीं बना था । अतः उपरोक्त 'ताम्रपट लेख' से यह सिद्ध होता है कि 'यह पाचवीं शती में जैन विहार था और इस स्थान का प्राचीन नाम वट-गोहाला (वट-गुफा-आवली) था' । कहा जा चुका है कि षट्खण्डागम के प्रकाण्ड विद्वान् टीकाकार, वीर सेन और जिनसेन इसी पश्चस्तूपान्वय के आचार्य थे और यह जैन विहार महान् विद्या-केन्द्र रहा था ।

#### 8 देवगढ़ (मध्य भारत):—

देवगढ़ ललितपुर जिले के अतर्गत ललितपुर रेलवे स्टेशन से 19 मील तथा जाखनौन स्टेशन से 19 मील दूर वेतवा नदी के तट पर है । देवगढ़ की पहाड़ी कोई डेढ़ मील लम्बी व छ फर्लांग चौड़ी है । इनमें अधिकांश जैन मन्दिर हैं जिनकी संख्या 31 है । इनमें मूर्तियों, स्तम्भों, दीवारों, शिलाओं आदि पर शिला लेख भी पाये जाते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि ई० 8वीं शती से 12वीं शती के बीच इनका निर्माण हुआ ।

सब से बड़ा बारह नम्बर का शान्ति नाथ मंदिर है, जिसके गर्भ गृह में 12 फुट ऊँची खड्गासन प्रतिमा है । एक स्तम्भ पर भोजदेव के काल (वि० स० 919 मुताबिक ई० 862) का एक लेख भी उत्कीर्ण है । लेख में वि० स० के साथ साथ शक स० 784 का भी उल्लेख है । बड़े मण्डप में बाहुबलि की मूर्ति है, यही मंदिर यहाँ का मुख्य देवालय है ।

पाँचवाँ मंदिर सहस्रकूट चैत्यालय है जो बहुत कुछ बचा हुआ है । उसके कूटों पर कोई 1008 जिन प्रतिमाएँ उत्कीर्ण हैं ।

'पुरातत्व विभाग की रिपोर्ट' के अनुसार देवगढ़ से कोई 200 शिलालेख मिले हैं, जिनमें से 60 में उनका लेखन-काल भी अंकित है,

जिनसे वे वि० सं० ११९ से १८७६ तक के पाये जाते हैं। तात्पर्य यह कि इस क्षेत्र का महत्व १९वीं शत तक बना रहा।

### ९ खजुराहो:—

महोवा से ३४ मील दक्षिण की ओर खजुराहो स्थित है। मध्य भारत का यह दूसरा देवालय नगर है। यहाँ जैन मंदिरों में तीन विशेष उल्लेखनीय हैं—पार्श्वनाथ, आदिनाथ और शान्तिनाथ। इन में पार्श्वनाथ मंदिर सब में बड़ा है।

खजुराहो के जैन मंदिरों की विशेषता यह है कि इन में मण्डप की अपेक्षा शिखर की रचना का ही अधिक महत्व है।

ग्वालियर राज्य में ग्यारसपुर में भी एक भग्न जैन मंदिर का मण्डप विद्यमान है जो अपने विन्यास व स्तम्भों की रचना आदि में खजुराहो के घण्टाई मण्डप के ही सदृश है।

### १०. सुवर्णगिरि (सोनागिरि), मुक्तागिरि, कुण्डलपुर:—

मध्यप्रदेश में तीन और जैन तीर्थ हैं जहाँ पहाड़ियों पर अनेक प्राचीन मंदिर बने हुए हैं। बुन्देलखंड में दतिया के समीप सुवर्णगिरि (सोनागिरि) है जहाँ १०० छोटे बड़े जैन मंदिर हैं।

मुक्तागिरि तीर्थ क्षेत्र बैतूल के अंतर्गत है। अति सुन्दर पहाड़ी की घाटी के समतल भाग में कोई २०-२५ जैन मंदिर हैं जिनके बीच लगभग ६० फुट ऊँचा जलप्रपात बहता है। अंग्रेज इतिहासकार जेम्स फर्गुसन ने लिखा है:—

‘समस्त भारत में इसके सदृश दूसरा स्थान पाना दुर्लभ है, जहाँ प्रकृति की शोभा का वास्तुकला के साथ ऐसा सुन्दर सामंजस्य हुआ हो’।

मध्यप्रदेश का तीसरा जैन तीर्थ दमोह के समीप कुण्डलपुर

नामक स्थान है, जहाँ एक कुण्डलाकार पहाड़ी पर 25-30 जैन मंदिर बने हुए हैं। पहाड़ी के बीच एक घाटी में बना हुआ महावीर का मंदिर अपनी विशालता, प्राचीनता, व मान्यता के लिये विशेष प्रसिद्ध है। यहाँ बड़े बाबा महावीर की विशाल मूर्ति होने के कारण यह 'बड़े बाबा का मंदिर' कहलाता है।

मध्यप्रदेश के जिला नगर खरगोल से पश्चिम की ओर 'ऊन' नामक एक ग्राम में तीन चार प्राचीन जैन मंदिर हैं। कुछ प्रतिमाओं पर लेख है जिनमें सम्वत् 1258 व उसके आस पास का उल्लेख है।

### राजपूताने के जैन मन्दिर

#### 11. बडली:—

अजमेर के बडली ग्राम से एक स्तम्भ खण्ड मिला है जिसे वहाँ के भैरोजी के मंदिर का पुजारी तमाखू कूटने के काम में लाया करता था 'यह षट्कोण स्तम्भ का खण्ड रहा है जिसके तीन पहलू एक इस पाषाण-खण्ड में सुरक्षित हैं और उन पर 13" × 10½" स्थान में एक लेख खुदा हुआ है। इसकी तिथि विद्वानों के मतानुसार अशोक की लिपियों से पूर्व कालीन है। भाषा प्राकृत है और उपलब्ध लेख खण्ड पर से इतना स्पष्ट पढ़ा जाता है कि वीर भगवान् के जिये 84वें वर्ष में मध्यमिका नगरी में कुछ निर्माण कराया गया'।

#### 12. ओसिया:—

जोधपुर से पश्चिमोत्तर दिशा में 50 किलोमीटर की दूरी पर ओसिया रेलवे स्टेशन के समीप ही ओसिया नामक ग्राम के बाहरी भाग में अनेक प्राचीन जैन मंदिर हैं, जिनमें 'महावीर मंदिर' अब भी तीर्थक्षेत्र माना जाता है। इसकी शिखर आदि रचना 'नागर शैली' की है। यहाँ शिलालेख में दर्ज है:—



(क) हस्तिशाला (25' × 30')—इस में छः स्तम्भ हैं। हाथिया पर आरूढ़ विमलशाह और उनके वंशजों की मूर्तियाँ हैं जिन्हें उनके वंशज पृथ्वी पाल ने 1150 ई० के लगभग बनवाया था।

(ख) आगे मुख्यमण्डप (25' फुट × 25' फुट) है।

(ग) आगे देवकुलो की पक्ति व मामिति और प्रदक्षिणा मण्डप है, जिसका ऊपर वर्णन आ चुका है। तत्पश्चात् मुख्य मन्दिर का रंग मण्डप या सभा-मण्डप मिलता है, जिसका गोल शिखर 24 स्तम्भों पर आधारित है। छत की पद्मशिला के मध्य में बने हुए लोलक की कारीगरी अद्वितीय और कला के इतिहास में विख्यात है। उत्तरोत्तर छोटे होते हुए चन्द्रमण्डलो युक्त कंचुलक कारीगरी सहित 16 विद्याधारियों की आकृतियाँ अत्यन्त सुन्दर हैं।

इस रंग मण्डप की समस्त रचना व उत्कीर्णन को देखते हुए दर्शक को ऐसा प्रतीत होने लगता है, जैसे मानो वह किसी दिव्य लोक में आ पहुँचा हो। रंगशाला से आगे चलकर नवचौकी मिलती है, जिसका यह नाम उसकी छत के विभागों के कारण पड़ा है। इससे आगे गूढ मण्डप है। वहाँ से मुख्य प्रतिमा का दर्शन-वन्दन किया जाता है। इसके सम्मुख वह मूल गर्भ-गृह है, जिसमें भगवान् ऋषभनाथ की धातु प्रतिमा विराजमान है।

(2) लूण-वसही:—

लूण-वसही के नाम से विख्यात नेमिनाथ भगवान् का यह मन्दिर विमल-वसही के सम्मुख ही स्थित है। इसका निर्माण सन् 1232 ई० में बघेल वंशी राजा वीर धवल के दो मन्त्री-भ्रातृ 'तेजपाल और वस्तु पाल' ने किया था। तेजपाल मन्त्री के पुत्र 'लूण सिंह' की स्मृति में बनवाये जाने के कारण इस मन्दिर का नाम लूण-वसही प्रसिद्ध हुआ। इस मन्दिर का विन्यास व रचना प्रायः आदिनाथ मन्दिर के सदृश

है। इस में विशेषता यह है कि इसकी हस्तिशाला इस प्रांगण के बाहर नहीं, किन्तु भीतर ही है। रंग मण्डप, नवचौकी, गूढ-मण्डप और गर्भ की रचना पूर्वोक्त प्रकार की है। किन्तु यहाँ रंग मण्डप के स्तम्भ कुछ अधिक ऊँचे हैं और प्रत्येक स्तम्भ की बनावट व कारीगरी भिन्न है। मण्डप की छत कुछ छोटी है किन्तु इसकी रचना व उत्कीर्णन का सौन्दर्य 'विमल-वसही' से किसी प्रकार कम नहीं। इसके रचना सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए फर्गुसनसाहब ने कहा है:—

‘कि यहाँ संगमरमर पत्थर पर जिस परिपूर्णता, जिस लालित्य व जिस सतुलित अलंकरण की शैली से काम किया गया है, उसकी कहीं भी उपमा मिलना कठिन है।’

इन मंदिरों में संगमरमर की कारीगरी को देखकर बड़े-बड़े कलाकार विशाद आश्चर्य-चकित होकर दाँतो तले अगुली दबाये बिना नहीं रहते। यहाँ भारतीय शिल्पियों ने जो कला-कौशल व्यक्त किया है, उससे कला के क्षेत्र में भारत का मस्तिष्क सदैव गर्व से ऊँचा उठा रहेगा।

कारीगर की छैनी ने यहाँ काम नहीं दिया। संगमरमर को घिस-घिस कर उनमें वह सूक्ष्मता व काँच जैसी चमक व पारदर्शिता लाई गई है, जो छैनी द्वारा लाई जानी असम्भव थी। ‘कहा जाता है कि इन कारीगरों को घिस कर निकाले हुए संगमरमर के चूर्ण के प्रमाण से वेतन दिया जाता था’। तात्पर्य यह कि इन मन्दिरों के निर्माण से ‘एच० जिम्मर’ के शब्दों में —

‘भवन ने अलंकार का रूप धारण कर लिया है, जिसे शब्दों में समझना असम्भव है’

(3) पित्तलहर:—

लूण-वसही से पीछे की ओर पित्तलहर नामक जैन मन्दिर, है जिसे

गुर्जर वंश के 'भीमाशाह' ने 15वीं शती ई० के मध्य में बनवाया । यहाँ के वि० स० 1483 के एक लेख में कुछ भूमि व ग्रामों के दान दिये जाने का उल्लेख है, तथा वि० स० 1489 के एक अन्य लेख में कहा गया है कि 'आबू के चौहान वंशी राजा राजधर देवड़ा चुन्डा ने यहाँ के तीन उपरोक्त मन्दिरों की तीर्थ-यात्रा को आने वाले यात्रियों को सदैव के लिये कर से मुक्त कर दिया ।'

इस मन्दिर के पित्तलहर नाम पड़ने का कारण यह है कि यहाँ आदिनाथ तीर्थकर की 108 मन पीतल की मूर्ति प्रतिष्ठित है । इस मूर्ति की प्रतिष्ठा स० 1525 में 'सुन्दर और गडा' नामक व्यक्तियों ने कराई थी । ये दोनों अहमदाबाद के तत्कालीन सुलतान महमूद बेगडा के मन्त्री थे । इस मन्दिर की बनावट भी पूर्वोक्त मन्दिरों जैसी है ।

यहाँ भगवान् महावीर मन्दिर के मुख्य गणधर गौतम स्वामी की पीले पाषाण की मूर्ति है ।

#### (4) चौमुखा मन्दिर:—

चौमुखा मन्दिर में भगवान् पार्श्वनाथ की चतुर्मुखी प्रतिमा प्रतिष्ठित है । यह मन्दिर 'खरतर वसही' भी कहलाता है । कुछ मूर्तियों पर के लेखों से इस मन्दिर का निर्माण-काल वि० स० 1515 के लगभग प्रतीत होता है । यह मन्दिर तीन तल्ला है, और प्रत्येक तल पर भगवान् पार्श्वनाथ की चौमुखी मूर्ति विराजमान है ।

#### (5) महावीर मन्दिर:—

देलबाडा से पूर्वोत्तर दिशा में कोई पांच किमी. की दूरी पर यह मन्दिर स्थित है । इसका निर्माण 15वीं शताब्दी से हुआ था । इसमें आदिनाथ, शान्तिनाथ और पार्श्वनाथ तीर्थकरों की मूर्तियाँ हैं, किन्तु मन्दिर की ख्याति महावीर नाम से ही है । अनुमानतः बीच में कभी

अन्यत्र किसी भी तीर्थ क्षेत्र में नहीं है। वर्तमान में वहाँ पाए जाने वाले मंदिरों में सबसे प्राचीन उन्हीं विमल शाह का है जिन्होंने आवू पर विमल वसही मन्दिर बनवाया। दूसरा मन्दिर राजा कुमार पाल का बनवाया हुआ है।

यहाँ 500 से भी अधिक जैन मन्दिर हैं जिनमें 5000 मूर्तियों तीर्थंकरों की स्थापित हैं।

रचना, शिल्प व सौंदर्य में ये मन्दिर देलवाड़ा मन्दिरों का अनुकरण ही हैं।

### 18 गिरनार

सौराष्ट्र का दूसरा महान तीर्थ क्षेत्र है गिरनार। इस पर्वत का प्राचीन नाम 'ऊर्जयत' व 'रैवतिक' गिरि पाया जाता है जिसके नीचे बसे हुए नगर का नाम गिरिनगर रहा होगा जिसके नाम से अब स्वयं पर्वत ही गिरिनार (गिरिनगर) कहलाने लगा है।

जूनागढ़ से इस पर्वत की ओर जाने वाले मार्ग पर ही वह इतिहास प्रसिद्ध विशाल शिला मिलती है जिस पर अशोक, रुद्रदामन और स्कंदगुप्त सम्राटों के शिलालेख खुदे हुए हैं और इस प्रकार जिस पर 1000 वर्ष का इतिहास लिखा हुआ है।

जूनागढ़ के समीप ही घरसेनाचार्य की चन्द्र गुफा है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। इस प्रकार यह स्थान ऐतिहासिक व धार्मिक दोनों दृष्टियों से प्राचीन सिद्ध होता है।

गिरिनगर पर्वत का जैन धर्म से इतिहासातीत सम्बन्ध इस लिये पाया जाता है क्योंकि यहाँ पर ही बाईसवे तीर्थंकर नेमिनाथ ने तपस्या की थी और निर्वाण प्राप्त किया था।

इस तीर्थ का सर्व प्राचीन उल्लेख स्वामी समतमद्रकृत बृहत्स्व-  
यम्भ स्तोत्र (5वीं शती) में मिलता है जिसमें नेमिनाथ भगवान् की  
स्तुति की गई है।

वर्तमान में यहाँ का सबसे प्रसिद्ध विशाल व सुन्दर मन्दिर नेमि-  
नाथ का है। इसका निर्माण चालुक्य नरेश जय सिंह के दण्डाधिप  
सञ्जन ने खगार राज्य पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् सम्वत्  
1158 में कराया था। मन्दिर के प्रांगण में कोई 70 देवकुलिकाएँ हैं।  
इनके बीच मन्दिर बना हुआ है जिसका मण्डप बड़ी सुन्दरता से  
अलंकृत है।

यहाँ एक दूसरा उल्लेखनीय मन्दिर मल्लिनाथ तीर्थकर का है  
जिसे मन्त्री वस्तुपाल ने बनवाया था।

### गोम्मटेश्वर (श्रवणवेलगोल)

मैसूर से 100 किलोमीटर की दूरी पर 4070 फुट ऊँची विध्य-  
गिरि पहाड़ी पर श्रवणवेलगोल में गोम्मटेश्वर (बाहुबलि) की एक  
विशालकाय 57 फुट ऊँची प्रतिमा है जो पत्थर को काट कर बनाई  
गई है। इस मूर्ति की विशालता का परिमाण नीचे दिया जाता है।

ऊँचाई—57 फीट

कंधों की चौड़ाई—26 „

पाव का अगूठा— $2\frac{3}{4}$  „

हाथ की मध्यमिका उँगली— $5\frac{1}{4}$  „

ऊँचाई —  $5\frac{1}{2}$  „

कमर — 10 „

यह नग्न पाषाण मूर्ति वर्षा, आँधी, सर्दी, गर्मी का मुकाबला करती हुई सीधी आकाश के नीचे खड़ी है। इसका मुख उत्तर को है 15 मील की दूरी से भी यह मूर्ति अपनी छटा को लिये हुए स्पष्ट दिखाई देती है। पर्वत पर बनी 500 सीढ़िया पार करके यात्री इस मूर्ति की रचना, कला और सौष्ठव-सौंदर्य को देख कर शातमनः हो कर आश्चर्य चकित होते हैं।

शिलालेख से मालूम होता है कि वीर सेनापति चामुण्डराय ने आचार्य नेमिचन्द्र की प्रेरणा से इसे निर्मित करवाया। यह राजा राजमल्ल या रच्चमल के मन्त्री भी थे। इस अद्भुत प्रस्तर प्रतिमा की प्रतिष्ठा 984 ई० में की गई। इसके आसपास की निर्मितियाँ सन 1161 की हैं।

(1) उड़ीसा में भूवनेश्वर (भुवनेश्वर) के निकट प्रथम शताब्दी ई. पू की जैन गुफाओं में चित्रकारी के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं। सम्राट् खारवेल के (161 ई. पू.) हाथी गुफा के शिलालेख में जैन चित्रकला का वर्णन आता है।

(2) तजोर के निकट सित्तनवासल (सिद्धानाँवासः) में सातवीं शताब्दी की जैन चित्रकारी के कुछ नमूने देखने को मिलते हैं। सित्तन-वासल के जैन गुफा मन्दिर में इसकी दीवारों पर पल्लव राजाओं की शैली के चित्र हैं, जो तमिल सस्कृति और साहित्य के महान् संरक्षक व प्रसिद्ध कलाकार राजा महेन्द्र वर्मा प्रथम (600—625 ई०) के बनवाये हुए हैं।

यहां अब दीवारों और छत पर सिर्फ दो चार चित्र ही कुछ अच्छी हालत में बचे हैं। इनकी विशेषता यह है कि बहुत थोड़ी, किन्तु स्थिर और दृढ़, रेखाओं में अत्यन्त सुन्दर आकृतियां बड़ी होशियारी के साथ बनाई गई हैं जो सजीव सी जान पड़ती हैं। गुफा में 'समवसरण' की सुन्दर रचना चित्रित है। सारी गुफा कमलों से अलंकृत है। खम्भों पर नर्तकियों के चित्र हैं। बरामदे की छत के मध्य भाग में पुष्करिणी का चित्र है। जल में पशु पक्षी विहार कर रहे हैं। चित्र के दाहिनी ओर तीन मनुष्याकृतियां आकर्षक और सुन्दर हैं।

गुफा में पर्यक मुद्रा में स्थित पुरुष प्रमाण अत्यन्त सुन्दर पाँच तीर्थंकर-मूर्तियां हैं। पल्लवकालीन चित्र भारतीय विद्वानों के लिए अध्ययन की वस्तु है।

(3) तिरुपुरुत्तिकुनरम् या जिन-काची (काजीवरम) के प्राचीन जैन मन्दिर में सुन्दर चित्तों के कुछ अवशेष अब भी देखने को मिलते हैं ।

(4) श्रवणबेलगोल की जैन बस्ति के भित्ति चित्र भी अपनी शोभा लिये हुए हैं ।

सित्तनवासल के बाद जैन धर्म से सम्बद्ध चित्रकला के उदाहरण दसवीं शताब्दी से लगाकर पंद्रहवीं शताब्दी तक मिलते हैं । विद्वानों का कहना है कि इस मध्यकालीन चित्रकला के अवशेषों के लिये भारत “जैन भण्डारी” है, क्योंकि प्रथम तो इस काल में प्रायः एक हजार वर्ष तक जैन धर्म का प्रभाव एक बहुत बड़े भाग में फैला हुआ था । दूसरे, जैनो ने बहुत बड़ी संख्या में धार्मिक ग्रंथ ताड़पत्रों पर लिखवाये और चित्रित करवाये थे ।

#### ताड़पत्रीय चित्र—

(1) सब से प्राचीन चित्रित ताड़पत्र ग्रंथ दक्षिण में मैसूर राज्य में “मूडबिद्री” तथा उत्तर में “पाटन” (गुजरात) के जैन भण्डारों में मिले हैं ।

मूडबिद्री में षट्खण्डागम की ताड़पत्रीय प्रतियाँ, इसके ग्रंथ व चित्र दोनों दृष्टियों से बड़ी महत्वपूर्ण हैं । सन् 1113 ई. में लिखी गई एक प्रति में पांच ताड़पत्र सचित्र हैं इनमें दो ताड़पत्र तो पूरे चित्रों से भरे हैं, दो के मध्य में लेख है, और दोनों तरफ कुछ चित्र हैं । इन ताड़पत्रों पर चक्र आकृति, कोणाकृतियाँ चौकोण आकृतियाँ, गोलाकृतियाँ, पद्मासन-जिन-मूर्तियाँ, सात-सात साधु नाना प्रकार के आसनो व हस्तमुद्राओं सहित चित्रित हैं ।

(2) उक्त चित्रों के समकालीन “पश्चिमी जैन शैली” की चित्र



कला के उदाहरण “निशीथ चूर्णि”, की “पाटन के संघवीगाडा के भन्डार में सुरक्षित ताडपत्रीय प्रति में मिलते हैं। यह प्रति उसकी प्रशस्ति अनुसार भृगुकच्छ (भड़ौच) में सोलंकी नरेश जयसिंह (1094 से 1133 ई०) के राज्यकाल में लिखी गई थी। इसमें सुन्दर चक्राकार आकृतियां बहुत हैं।

(3) सन् 1127 ई० में लिखित खम्भात के “शान्तिनाथ जैन मन्दिर” में स्थित नगीनदास भन्डारी की “ज्ञातधर्म” सूत्र की ताडपत्रीय प्रति के पद्यासन महावीर तीर्थंकर के आसपास चौरी बाहको सहित, तथा सरस्वती देवी का अमंग चित्र उल्लेखनीय है। देवी चतुर्भुज है।

(4) बड़ौदा जनपद के अंतर्गत छाणी के जैनी भन्डार की “ओध निर्गुक्ति, की ताडपत्र पर बनी प्रति (सन् 1161) के चित्र विशेष महत्व के हैं। इनमें 16 विद्यादेवियों तथा अन्य देवियों और यक्षों के सुन्दर चित्र उपलब्ध हैं।

(5) सन् 1288 में लिखित सुबाहु कथादि “कथा संग्रह” की ताडपत्र की प्रति में 23 चित्र हैं जिनमें से अनेक अपनी विशेषता रखते हैं। एक में भगवान् नेमिनाथ की वर यात्रा का सुन्दर चित्रण है। कन्या राजमती विवाह मण्डप में बैठी है, जिसके द्वार पर खड़ा हुआ मनुष्य हाथी पर बैठे नेमिनाथ का हाथ जोड़ कर स्वागत कर रहा है। नीचे की ओर मृगाकृतियां बनी हैं। चित्र बलदेव मुनि के हैं। एक में वे एक वृक्ष के नीचे मृग सहित खड़े हुए रथवाही से आहार ग्रहण कर रहे हैं।

### रंगों का प्रयोग

सन् 1350-1450 ई० के बीच में ताडपत्रीय चित्रों में सौंदर्य की दृष्टि से कुछ विशिष्टता देखी जाती है। आकृति-अंकन अधिक सूक्ष्मतर व कौशल से हुआ है। आकृतियों में विषय की दृष्टि से

तीर्थंकरों के जीवन की घटनाएँ भी अधिक चित्रित हुई हैं, और उनमें विवरणात्मकता लाने का प्रयत्न दिखाई देता है। रंग लेप में विचित्रता और चटकीलापन आया है। इसी काल में सुवर्ण रंग का प्रयोग प्रथम बार दृष्टिगोचर होता है। यह ईरानी चित्र कला (मुगल शैली) का प्रभाव है।

6. उपर्युक्त शैली (सुवर्ण रंग) की प्रतिनिधि रचनाएँ अधिकांश कल्पसूत्र की प्रतियों में पाई जाती हैं, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण ईडर के आनंदजी मंगलजी पेढी के ज्ञान भण्डार की वह प्रति है जिसमें 34 चित्र हैं, जो महावीर के और कुछ पार्श्वनाथ व नेमिनाथ तीर्थंकरों की जीवन घटनाओं से सम्बन्धित हैं। इसमें स्वर्ण रंग का प्रथम प्रयोग हुआ है, आगे चलकर तो ऐसी रचनाएँ भी मिलती हैं, जिनमें न केवल चित्रों में ही सुवर्ण रंग का प्रचुर प्रयोग है, किन्तु समस्त ग्रंथ-लेख ही सुवर्ण की स्याही से किया गया है। अथवा समस्त भूमि ही सुवर्ण-लिप्त की गई और उस पर चाँदी की स्याही से लेखन किया गया है।

कल्पसूत्र की आठ ताड़पत्र तथा बीस कागज की प्रतियों पर से लिये हुए कुछ 374 चित्रों सहित कल्पसूत्र का प्रकाशन भी हो चुका है। (पवित्र कल्पसूत्र अहमदाबाद, 1952)

प्रोफेसर नार्मन ब्राउन ने अपने “दि स्टोरी आफ कालक” (वाशिंगटन, 1933) नामक ग्रन्थ में 39 चित्रों का परिचय कराया है।

साराभाई नवाब ने अपने कालक कथा संग्रह (अहमदाबाद, 1958) में 6 ताड़पत्र और 9 कागज की प्रतियों पर से 88 चित्र प्रस्तुत किये हैं।

डा० मोती चन्द ने अपने ‘जैन मिनिएचर पेंटिंग्स फ्रॉम वैस्टर्न

इन्डिया' (अहमदाबाद, 1949) में 265 चित्र प्रस्तुत किये हैं।

उपर्युक्त महान् अन्वेषको ने जैन चित्रकला का अति महत्वपूर्ण आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

### कागज पर चित्रकला

कागज का आविष्कार चीन देश से ई० 105 में हुआ माना जाता है। 10वीं—11वीं शती में उसका निर्माण अरब देशों में होने लगा और वहाँ से भारत में आया।

(1) जैसलमेर के जैन भण्डार से 'ध्वन्यालोक लोचन' को उस प्रति का अन्तिम पत्र मिला है जो जिनचन्द्र सूरि के लिये लिखी गई थी, जिसका लेखन-काल 1660 ई० के लगभग है।

(2) 'कारन्जा जैन भण्डार' से उपासकाचार (रत्नकरण्ड-श्रावकाचार) की प्रभाचन्द्र कृत टीका सहित कागज की प्रति का लेखन-काल स० 1415 (सन् 1358) है।

किन्तु कागज की सबसे प्राचीन चित्रित प्रति ई० सन् 1427 में लिखित वह 'कल्पसूत्र' है जो लन्दन की इन्डिया आफिस लायब्ररी में सुरक्षित है। इसमें 31 चित्र हैं और उसी के साथ जुड़ी हुई कालकाचार्य कथा में अन्य 13 चित्र। इस ग्रन्थ के समस्त 113 पत्र (pages) चाँदी की स्याही से काली व लाल पृष्ठभूमि पर लिखे गये हैं। इस प्रति के हाशियों पर शोभा के लिये हाथियों व हंसों की पकितियाँ, फूल पत्तियाँ अथवा कमल आदि बने हुए हैं।

(3) लक्ष्मण गणी कृत 'सुपासणाह चरित्र' की एक सचित्र प्रति पाटन के श्री हेम चन्द्राचार्य जैन भण्डार में स० 1479 (ई० 1422) में प० भावचन्द्र के शिष्य हरिनन्द मुनि द्वारा लिखित है। इसमें कुल 37 चित्र हैं जिनमें से 6 पूरे पत्रों में व शेष पत्रों के अर्द्ध व तृतीय

गगन में बने हुए हैं। इनमें सुपाश्वर् तीर्थंकर के अतिरिक्त सरस्वती, मातृ स्वप्न, विवाह, समवसरण, देशना आदि के चित्र बड़े सुन्दर हैं। इसके पश्चात् कालीन कल्पसूत्र की अनेक सचित्र प्रतियां नाना जैन मण्डारों में पाई गई हैं। जिन में विशेष उल्लेखनीय बडौदा के 'नर-सिंहजी मण्डार' में सुरक्षित है। यह प्रति यवनपुर (जौनपुर उ० प्रदेश में हुसैन शाह के राज्यकाल में वि० स० 1522 में, 'हर्षिणी श्राविका' के आदेश से लिखी गई थी। इसमें 86 पृष्ठ हैं और 'समस्त लेखन सुवर्ण स्याही से हुआ है।

अन्य विशेष उल्लेखनीय कल्पसूत्र की अहमदाबाद के 'देवसेनपाड़ा' की प्रति है, जो भडौच के समीप गन्धार बन्दर के निवासी साणा और जूठा श्रेष्ठियों के वंशजों द्वारा लिखाई गई थी। यह भी 'सुवर्ण स्याही' से लिखी गई है। कला की दृष्टि से इसके कोई 25-26 चित्र सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं, क्योंकि इन में 'भरतनाट्यशास्त्र' में वर्णित नाना नृत्य मुद्राओं का अंकन पाया जाता है। एक चित्र में महावीर द्वारा चन्द्रकोशिक नाग के वशीकरण की घटना दिखाई गई है।

(4) दिल्ली के शास्त्र मण्डार में पुष्पदन्त कृत अपभ्रंश 'महा-पुराण' की एक प्रति है जिसमें सैकड़ों चित्र तीर्थंकरों के जीवन की घटनाओं को प्रदर्शित करने वाले विद्यमान हैं।

(5) नागौर के शास्त्र मंडार में एक 'यशोधर चरित्र' की प्रति है, जिसके चित्रों की उसके दर्शकों ने बड़ी प्रशंसा की है।

(6) नागपुर के शास्त्र मंडार से 'सुगन्ध दशमी' कथा की एक प्रति मिली है, जिसमें उस कथा का उद्धृत करने वाले 70 से अधिक चित्र हैं।

(7) बम्बई के पन्नालाल जैन सरस्वती भवन में भक्ताभर